सिद्धि
स्वरूप
वैभव
श्रीमद् रामहर्षण दासजी महाराज

ठीक है न? अहो ! अपने सौभाग्य का सीमाङ्कन असंभव इसलिये है कि सौन्दर्य और शील का सिन्धु, अल्प-बिन्दु को अपनत्व की आँखों से अवलोकन करता हुआ, अपने में मिलाने के लिये आतुर हो रहा है।

श्री सिद्धिजी : प्राणनाथ के कर्तव्यीय कर्मों के अनुष्ठानों में प्रमाद और आलस्य ने कभी किंचित अन्तराय उपस्थित किया हो, ऐसा दासी ने कभी न देखा है और न सुना है। अस्तु, मंगल कामना करती हूँ कि मेरे प्रियतम, अपने प्रियतम के सम्प्रयोग से पूर्णतया परमानन्दोद्भूत-रस की अनुभूति करें। पुनः उदार शिरोमणि उस रस-सिन्धु का दिव्य-दर्शन अपनी चरण-सेविका को कराये बिना कैसे रह सकते हैं क्योंकि आपके लोकोत्तर शील के सिन्धु का सहज स्वभाव है कि वह अपने समीपवर्ती वस्तु को उदरस्थ किये बिना नहीं रहता।

श्री लक्ष्मीनिधिजी : प्रिये ! अब आपकी अनुमति से मेरे हृदय का हर्ष और उत्साह अधिक-अधिक बढ़ रहा है। अच्छा, प्रथम मैं दाऊजी के समीप जा रहा हूँ। आप यहीं पर अपने अलियों के साथ भगवच्चरित्र का चिंतन करें।

श्री सिद्धिजी : (सखियों समेत) प्राणनाथ का मंगल हो, मंगल हो, मंगल हो। अपने कुल के इष्ट देव आपकी अभीष्ट-अभिलाषा को अविलम्ब पूर्ण करें।

[श्री लक्ष्मीनिधिजी का प्रस्थान.....]

पटाक्षेप

....

षड्विंशः दृश्यः २६

[श्री सिद्धि कुँअरिजी अपने सखियों तथा दासियों से समावृत बैठी हुई, श्री लक्ष्मीनिधिजी के आने की प्रतीक्षा कर रही हैं। प्राणेश्वर की प्रतीक्षा में अधीर, वे एक पद भी गुनगुना रही हैं।]

पद : नीकी लगे मोहि प्रिय की आवनि।
सिंह मराल गयन्द की गति जो, फीकी लगै भल भावनि ।
गौर वपुष युत वस्त्राभूषण, कोटि काम ललचावनि ।
परिकर वृन्द चतुर्दिक हर्षण, सेवा साज सुहावनि ।
चलहु सखी मिथिलेश कुँअर की, करहिं आरती पावनि ।

[पद-समाप्ति के अनन्तर दासी का प्रवेश...]

दासी : स्वामिनीजू के चरणों में दासी का प्रणाम है। श्री निमिवंश-कुमार अन्तःपुर में पधार रहे हैं, यही समाचार लेकर आई हूँ, कुँअरवल्लभे !

श्री सिद्धिजी : बडी प्रतीक्षा के पश्चात् इस श्रवणामृत-संवाद ने मेरे सूखते हुये हृदय को हरा कर दिया। दासी ! चलो....

[श्री सिद्धिजी आगे चलकर आरती करके प्रणाम करती हैं, पुनः कुँअर को सिंहासनासीन कराके पाद्यादिक-षोड़षोपचार से पूजन करती हैं और पति के संकेत से तत्सुख सम्वर्धनार्थ, उन्हीं के साथ आसन में बैठ जाती हैं।]

श्री लक्ष्मीनिधिजी : (आनँद में भरकर) प्रिये ! वर्णनातीत के विषय में क्या कहूँ ? "वाणी बिना नेत्र के" तथा "नेत्र बिना वाणी के" हैं। आज विदेहकुमार की विदेहता तथा सदेहता के सफलीभूत-सामञ्जस्य ने आत्मा को आनन्दाम्भोधि में निमग्न करके, आनन्द के अतिरिक्त उसके अस्तित्व को अकिंचित बना दिया। अहो ! पुं-प्रकृतिमय विश्व के नेत्रों का साफल्य एवं आत्मानुरूप आत्म-वैभव की आढ्यता का चरम-पर्व दाशरथि राम को चर्म-चक्षुओं का विषय बनाना है।

श्री सिद्धिजी : प्राणनाथ ! जो प्राणों के प्राण, जीवों के जीव, सम्पूर्ण-सुखों के सुख और योगियों के रमने के एक-मात्र स्थान हैं, उन सबको रमाने वाले राम का दिव्य-दर्शन रावरी चर्म-चक्षुओं को सर्वतोभावेन सुलभ हो गया है, क्या? श्रवण करने के लिये, श्रवणों की आतुरता अत्यधिक प्रवर्धमान हो रही है।

श्री लक्ष्मीनिधिजी : हाँ, हाँ, हो गया प्रिये ! चिर-दिनों से तृषित मेरे इन चर्म-चक्षुओं की तीव्रतम-तृषा को शान्ति प्रदान करने वाला, दृष्ट-चित्तापहारी, अमौलिक और अलौकिक सौन्दर्य-सुधा का सागर संप्राप्त तो हो गया, किन्तु आश्चर्य ! आश्चर्य !! पीकर... खूब पीकर भी इन लोभी-लोचनों में तृप्ति का नाम नहीं, पहले की अपेक्षा इनकी अपेक्षाकृत प्यास में किंचित कमी न होकर, आधिक्य का ही अनुभव हो रहा है। साथ ही उस एक रस रूप-सुधा के समुद्र से, कितने भी पीने वाले पेय को पी लें और पीते जाँय, फिर भी उसमें अक्षुण्ण, क्षण-क्षण, नव-नव, तरल-तरङ्गाकुला वृद्धि बनी ही रहती है, यह मेरा अनुमान प्रमाण त्रैकालिक त्रैसत्यता से ओत प्रोत है, आर्ये ! मेरा अनुभूत-विषय, सृष्टि के सृजन, संरक्षण और संहार करने वाले को भी, अपने को स्पष्ट प्रमाणित कर देगा, ऐसी उसकी अखंड-आनन्दमयी-सत्ता मेरे समझ में आती है।

श्री सिद्धिजी : प्यारे ! अपने प्राण-प्यारे सुहृद से मिलने की सुखमयी, सुन्दर-गाथा उपक्रम से लेकर उपसंहार तक श्रवण कराकर, दासी की कर्ण-पिपासा को शान्त करने की कृपा करेंगे क्या?

श्री लक्ष्मीनिधिजी : प्रियतमे ! आचार्यादेश के अनुसार समाज के साथ देखने योग्य सच्चिदानन्दमयी-दिव्य-देह को धारण करने वाले, दशरथ-नन्दन श्री राम के दर्शन का लाभ लेने गया किन्तु क्या कहूँ.....

[गद्गद्ता से कंठावरोध हो जाने से कुँअर कुछ कहने में भी असमर्थ हो जाते हैं, अश्रु-कंपादि सात्विक भावों का उदय उनके शरीर में हो जाता है। कुछ सुस्थिर हो जाने पर....]

श्री सिद्धिजी : प्राणनाथ ! यदि आपके द्रवीभूत-चित्त में अस्थिरता का आगमन पुनः संभव हो तो रहने दें, स्वस्थ होने के अनन्तर आपकी अनुग्रहीता-दासी को भगवद्भागवत की सम्प्रयोगिता का अत्यन्तानंद संप्राप्त हो जायगा।

श्री लक्ष्मीनिधिजी : प्रिये ! चार्वाङ्गी के कथनानुसार उस अभूतपूर्व-अशेषानन्द के दृश्य का चित्रण भले चित्रित न कर सकूँ किन्तु चित्त के दर्पण में तो उस चित्र का आन्दोलन अनवरत हो ही रहा है, जिससे चित्त की चंचलता एकान्त में और-और अधीर बनाने में अग्रसर हो रही है, इससे तो यही अच्छा है कि उस आनन्दानुकथन के द्वारा आपके प्यासे-कर्णों की पिपासा को ही क्यों न शान्त करूँ। मेरा मन इसमें अत्यन्त

असहिष्णुता का अनुभव कर रहा है कि मैं तो महामोदकारी मधुर-मधुर मोदकों से अपना उदर पोषण करूँ और आपके कर्णों तक उस सुधा-स्वाद का संवाद भी न पहुँचा सकूँ। अलभ्य-पदार्थों को अकेले न खाकर स्वजन समाज को वितरण करके खाना निमिकुल का सहज औदार्य है, अस्तु आपके पतित्व-पद में प्रतिष्ठित होकर तदनुसार आचरण न करना कुल को कलंकित करना है।

श्री सिद्धिजी : पतिव्रता पत्नी का सहज धर्म होता है प्राणनाथ; कि वह अपने पति-परमेश्वर के पश्चात् ही प्रसाद-सेवन करे। अपना अनुभव कहता है कि प्रीतम-प्रसाद की माधुरी में कुछ अनोखा-स्वाद सन्निहित रहता है। प्राप्तव्य की प्राप्ति से प्रसन्नतापूर्ण प्राणनाथ का प्रफुल्ल-मुखाम्भोज ही दासी का परम भोग्य है, जिसके द्वारा दुर्लभ, दुराराध्य, दुःसाध्य वस्तु भी सुलभ, सुखाराध्य और सुसाध्य होकर इन्द्रियों की तृप्ति मूलक विषय बन जाती है। मुझे वंचित रखकर, किंचित स्वसुख के सेवन में आपका मन संलग्न नहीं होता, उसका अनुभव मुझको कराने के लिये जो आपके मन में उतावली होती है, वह वस्तुतः आप श्री के स्वभाव से समुत्पन्न उत्कृष्ट-उदारता की परिचायिका है, प्रभो !

श्री लक्ष्मीनिधिजी : (प्रेम-चिह्नों से चिह्नित होकर) प्रिये ! चक्रवर्ती-कुमार राघवेन्द्र के दिव्य-दर्शन ने अत्यन्त त्वरा के साथ सहज ही बड़े-बड़े ज्ञानियों के ज्ञान को आत्मसात करके तत्क्षण उनके विराग को राग के रूप में परिवर्तित कर दिया आश्चर्य! आश्चर्य !! धन्य है, कलाधिप की कला-कुशलता को। कलानाथ की मुख श्री का प्रणय-प्रेक्षण करते ही सारे मैथिल-समाज के सुलोचन अपने अम्बक नाम को यथार्थ चरितार्थ कर अश्रुओं की अजस्र-धारा बहाने लगे, शरीर पुलकित होकर पनस की भाँति फूल कर रोमांचित हो गये, कण्ठ में गद्‌गदता समा गई, चतुर- चूडामणि के चौर्य-चातुरी से चित्त भी चोरी चला गया। मनमोहन की एक मन्द मुसकान से मन मोहित होकर पुनः किसी के पास वापस न आया। अस्तु, सब बिना चित्त और बिना मन के होकर खो गये। ज्ञानियों के ज्ञान की गठरी कहीं गिर गई, सबका सर्वस्व लुट गया, मिथिला पुरी उजाड़ हो गई, उसका बसना पुनः किसी प्रकार सम्भव नहीं है, प्रियतमे !

श्री सिद्धिजी : प्राणनाथ ! हमारे परम पूज्य श्वसुर देव की सार गर्भित तथ्य से संयुक्त सारतम दशा का दिग्दर्शन कराने की कृपा हो। उन्होंने तो अपने को अपने मनोबल से आत्मस्थ ही रखा होगा।

श्री लक्ष्मीनिधिजी : प्रिये ! रस-स्वरूप रघुनन्दन रामभद्रजू के रमणीय रूपौदार्य ने परम पूज्य पिताजी को भी प्रेम-पंक में ऐसा फंसाया कि वे अब तक उसी कर्दम में पड़े-पड़े पीड़ा से कराह रहे हैं, उनके उत्थापक जो विशिष्ट बलशाली थे, वे सभी उनका हाथ पकड़ते ही उसी कीच में स्वयं समाविष्ट हो गये। दाऊजी आज विशेष विदेहता की तराजू में चढ़कर अपने भार से भूमि का स्पर्श नहीं छोड़ रहे हैं, जबकि दूसरे पलरे में उन्हें उठाने के लिये भारी से भारी-भार-भूत पदार्थ रखे जा रहे हैं। आज उनका सहज विरागी मन राम के रूप का रागी बन गया है, आश्चर्य ! ब्रह्मविद-वरिष्ठ का ब्रह्मज्ञान ब्रह्म-सुख के साथ बिना विदेह-वंशावतंस को बतलाये श्री कौशिल्या-कुमार को देखते ही मन, चित्त और बुद्धि को विर्सजन कर न जानें कहाँ भाग गया। अन्वेषण करने पर भी वह पितृ-पितामहों से परिमार्जित परम-धन अप्राप्य रहा। स्वयं अपने श्री मुख से कहकर,

उन्होंने समाज के बीच अपने को राम-रस का रसिक उद्‌घोषित कर दिया है, करें क्या ? न भी कहें तो उनके शरीर से समुत्पन्न अश्वादि अष्ट-सात्विक भाव सबको बताये बिना न रहेंगे।

श्री सिद्धिजी : (संकोच के साथ) प्रभो ! मेरे प्रियतम का प्रेम-प्राबल्य अपने परम सुहृद का साक्षात् दर्शन और स्पर्शन करके, सबको आश्चर्य-सागर में निमग्न करने वाला रहा होगा, यह मेरा अनुमान प्रमाण सर्वथा सत्य है न ?

श्री लक्ष्मीनिधिजी : मैं आपकी अनुमान-प्रमाण-प्रयुक्त-प्रणाली एवं वाणी-विसर्ग को असत्य उद्‌घोषित नहीं कर सकता, किन्तु प्रेम और प्रेम के रहस्य को भला मैं क्या समझूँ, प्रिये ! क्योंकि वह अनन्त, अगम्य, अनिर्वचनीय और सूक्ष्म हैं, प्रेम को तो प्रेम स्वरूप महानात्मा रघुनन्दन श्रीराम भद्रजी ही भली भाँति जानते हैं। मैं इतना समझ पाया हूँ, कि जब कभी सब में रमने वाले एवं सबको रमाने वाले राम के नाम, रूप, लीला, धाम का किंचित हृदय में संस्पर्श होता है, तब अपने आप मेरा सर्वस्व खो जाता है और अपनी स्मृति से भी हाथ धो बैठता हूँ। आज समाज में सर्वप्रथम श्रीराम जी की दृष्टि इस अपने अकिंचन जन पर पडी, साथ ही मेरी आँखे भी उनकी चित्त-चोरनी-चितवनि की ओर आकृष्ट होकर निर्निमेष जा लगीं, बस क्या था, क्या हो गया और कैसे हो गया, मुझे स्मरण नहीं है। प्राण वल्लभे ! श्रीराम जी ने लक्ष्मणकुमार के सहित अपना स्पर्श दे-देकर, मुझे सचेत किया। प्रकृतिस्थ होते ही मेरा शिर उनके चरणों में अपने आप गिर गया। नेत्रों ने अपने जल-बिन्दुओं से अपने विषय के पाद-पद्मों का प्रक्षालन किया। मुख भी तलवों को बिना चूमे न रहा। इन अंगों की स्नेहमयी क्रिया को देखकर, हाथों को इतनी अधिक स्पर्धा हुई कि सबको हटा कर स्वयं चरण-कमल के लाल-लाल-तलवों को सुहलाकर रस लेने लगे। नेत्र, करों की करतूत को देख रहे थे। बीच ही में लक्ष्मीनिधि के नाथ ने त्वरा के साथ उठाकर अपने आत्म-सखा को प्रगाढ़ालिंगन प्रदान किया। प्रिये ! फिर क्या कहना है, उस अमृतास्वाद को उस भौमा-सुख को, और उस अनल्पानन्द को। एक-दूसरे का अनुभव कर ये दोनों किस आश्चर्यमयी अप्राप्य और अनिर्वचनीय स्थिति में स्थिर हो गये हैं, देखकर देवता लोग आकाश से जय-घोष के साथ सुरभित-सुमनों की बहुल वर्षा कर-करके दुँदुभी नगाडे बजाने लगे। विलम्बित-समय के पश्चात् समयज्ञ श्री विश्वामित्रजी महाराज ने उठकर, हमदोनों को अपने सत्य-संकल्प की प्रबलता से प्रकृतिस्थ किया। हाँ ! हमारे प्रियतम के हृदय में हमारे प्रति कितना स्थान, कितना अनुराग ! अहो..... ! आकाश से अधिक अवकाश रखने वाले अपने हृदयाकाश को उन्होंने केवल हमारे ही विनियोग के लिए सर्वश्रेष्ठ समझकर धारण कर रक्खा है और कहाँ मैं, धिक्कार ! उनके लिए उनके प्रेम-सिन्धु के सीकरांश के बराबर भी मेरे हृदय में स्नेह नहीं है। हा रघुनन्दन आपके समान आप ही हैं.....।

[प्रेम मूर्छा से बेसुधि श्री सिद्धिकुँअरि जी की गोद में लुढ़क जाते हैं। श्री श्रीधर-कुमारी उपचार द्वारा सचेष्ट करती हैं।]

श्री सिद्धिजी : (सचेत करके) प्राणनाथ ! आपके प्राणाधिक प्रिय श्री चक्रवर्ती-कुमार उनके गुरुदेव सहित कहाँ ठहराये गये हैं ? वास-स्थान, सर्वकाल, सर्वसुखावह हैं न ? राजपुत्रों का अदर्शन एवं असम्बन्ध मुझे उनकी मंगल-कामना से वियुक्त करने में सक्षम

नहीं हो रहा है, अस्तु, नाथ से उनके सुख-सुविधा के संविधान का ज्ञान करने के लिए प्रश्न कर बैठी हूँ, मैं।

श्री लक्ष्मीनिधिजी : हे हृदयानन्द-वर्धिनीजू ! श्री गाधिनन्दन विश्वामित्र जी महाराज की अपेक्षा से, न चाहते हुए भी पिता जी के द्वारा श्री रघुवंश-विभूषण युगल कुमारों को ऋषियों के रहने योग्य उत्तम-उटजों में से एक-सर्वश्रेष्ठ उटज में सम्प्रति संवास दिया गया है। सुख-सम्प्राप्ति के लिए सुविधाओं का संचय सावधानी के साथ यथासम्भव किया गया है। सद्‌गुरु और सद्‌शिष्य की परम प्रसन्नता एवं दाऊजी के प्रबन्ध की बार-बार प्रशंसा मुझे यह बता रही थी कि यहाँ इन्हें अपने अयोध्या नगर से अधिक आनन्द का अनुभव हो रहा है। श्रीमान पिता जी ने मुझे अपनी आज्ञा द्वारा यह सुअवसर दिया है कि मैं वहाँ समय-समय पर बार-बार पहुँचता रहूँ और सेवा के ब्याज से सौन्दर्य-सार सुन्दर श्याम-गौर कलेवर वाले सुकुमारों के चन्दन-चर्चित चन्द्रानन का दर्शन एवं अनङ्ग मोहन अंगों का स्पर्श पा-पाकर सुख-सिन्धु में समाता रहूँ।

श्री सिद्धिजी : प्राणेश्वर के भाग्य-विधाता जब स्वयं भक्त-वत्सल भगवान् ही हैं तब भला आपको आपका ही अनन्य-भोग्य भरपूर भोगने को क्यों न मिले ! प्राणनाथ के प्रसाद की परम आर्ताधिकारिणी को भी समय से वह सुन्दर सुस्वादिष्ट सुभोग शीघ्र ही संप्राप्त होगा ऐसा अपने मन का महाविश्वास है। यह मेरे अन्तर्यामी की प्रेरणा से प्रेरित होकर निकले हुये वचन हैं। सम्भव है, स्वामी के समान दासी को भूख न लगी हो, इसलिए भोजन मिलने में इतना विलम्ब हो रहा है। धीरज भी मेरा पूर्ण साथ दे रहा है। हा... ! अन्न में मेरा सद्‌भाव नहीं है, पाने की पूर्ण कामना नहीं है, हाय... !

[अश्रु-विलोचना पति-पैरों में गिर जाती हैं, लक्ष्मीनिधिजी संभालते हैं।]

श्री लक्ष्मीनिधिजी : हे आर्य-नन्दिनीजू ! मुझमें जो है,. वह आपका है, आप में जो कुछ है, वह सर्वस्व मेरा है। इससे ऐसा कहते नहीं बनता कि आप में अमुक वस्तु न्यून है और मुझ में अधिक। अच्छा.....अब विश्राम करना चाहिये क्योंकि अर्ध-रात्रि व्यतीत होने जा रही है, अस्तु, चलकर शयन करना चाहिये।

श्री सिद्धिजी : बहुत अच्छा, आर्य नन्दनजू ! आपको ब्रह्म-मुहूर्त के प्रथम ही ब्रह्म-चिन्तन में लग जाना पड़ता है, फिर नित्य-कर्मों का अनुष्ठान करके आहूत-अतिथियों का कैंकर्य-कार्य करना भी आवश्यक होता है, इसलिए विश्राम की बेला का अब अतिक्रमण न होना ही अत्युत्तम है।

[दम्पति शयन-कक्ष की ओर प्रस्थित होते हैं।]

पटाक्षेप

....

सप्तविंशः दृश्यः २७

[श्री लक्ष्मीनिधि जी याज्ञीय सफलता की समुपलब्धि का शुभ-सन्देश सुनाने के लिये अपने अन्तःपुर में प्रवेश करके अपनी प्राण-वल्लभा के स्वरूपानुरूप-सत्कार से संप्रसन्न कुछ कहने की मुख-मुद्रा में सिंहासनासीन हैं।]

श्री सिद्धिजी : आर्यनन्दनजू के विकसित–मुखाम्भोज में मुझसे कुछ कहने की रेखायें सम्प्रति सम्यकतया उदित हो गई हैं, कहिये प्राणनाथ ! क्या आज्ञा है ? इच्छाओं या भावों के दमन से अत्यन्त हानिकारक–प्रतिक्रिया होती है, जो अन्त में पुरुष के व्यक्तित्व को विकृत कर देती है, इसलिए व्यक्तित्व को पूर्णरूपेण विकसित करने के लिये, विशिष्ट–व्यक्ति को अपनी शास्त्र–सन्तानुमोदित इच्छाओं, आशाओं और भावों को अपने अन्तरंग–व्यक्ति से व्यक्त करके पुनः उसको क्रियात्मक रूप देने में पूर्ण स्वतन्त्र होना चाहिये।

श्री लक्ष्मीनिधिजी : मैं अपनी प्रियतमा के श्रवण–कुंजों में सुवचन–सुधा समर्पण कर उन्हें अमर बनाने की लीला करने के लिये समातुर हो रहा हूँ प्रिये ! रहस्यात्मक कोई भी गोपनीय–वार्ता अपनी अनन्य–प्रयोजनात्मिका पत्नी से छुपाकर कोई भी व्यक्ति अपने व्यक्तित्व को उज्जवल नहीं बना सकता।

श्री सिद्धिजी : अहा..... ! अपने प्रियतम का परम प्यार ही तो मेरा सर्वस्व है। उसी के द्वारा अलभ्य का लाभ होना और अगोचर को गोचर हुआ देखना इत्यादि परस्पर–विरोधी–धर्मों के युग–पद–आश्रय को प्राप्त करना संभव है।

उपर्युक्त–वार्ता का विनियोग मैंने नैतिक–शास्त्रों का अवलम्बन लेकर सहज ही में किया है। उसका यह अर्थ नहीं की आप पर गोपनीय–वार्ता के श्रवण कराने का अविश्वास आरोपण करूँ। क्षमा करेंगे नाथ !

श्री लक्ष्मीनिधिजी : प्रिये ! आज विश्व–वन्दनीय श्री विश्वामित्रजी महाराज के निर्देशानुसार अष्ट–वृत्तों से संयुक्त शकट–संस्थिता, सुरम्य–मंजूषा में प्रतिष्ठित पुरारि के पिनाक–नामक कोदंड को विपुल–बल वाले पाँच सौ मल्ल रस्सों के द्वारा बड़े कठिनाई से कर्षण करते हुये, श्रीरामजी के दर्शनार्थ रंगभूमि में, उपस्थित–मुनियों के सम्मुख ले आये... !

श्री सिद्धिजी : (वार्ता की असमाप्ति ही में आतुरता के कारण बोल उठीं....) अच्छा! श्रीरामजी ने अपने गुरु गाधिनन्दन जू से शिव–धनुष देखने की जिज्ञासा प्रकट की होगी या स्वयं कौशिक–ऋषीश ने आश्चर्य मय–महान देव–धनु के देखने की आज्ञा दी होगी। क्षमा करेंगे देव ! मैं आतुरतावश बीच ही में बोल उठी। फिर क्या हुआ प्राणनाथ !

श्री लक्ष्मीनिधिजी : मंजूषा के आने पर परम पूज्य पिताजी ने प्रार्थना की "महाराज ! महद्धनु की मंजूषा महन्मल्लों द्वारा महत् परिश्रम से लाई हुई, मुनीश्वर के सम्मुख समुपस्थित है। वत्स श्रीरामभद्रजू पूर्ण स्वतंत्रता पूर्वक धनुर्दर्शन कर सकते हैं।" श्रवण करते ही श्री विश्वामित्र जी महाराज की अनुमति से श्री चक्रवर्ति–कुमार श्याम सुंदर श्रीरामने मंजूषा को प्रणाम करके एक कर–कंज से उसके ऊपर के पल्ले का उद्घाटन किया और दूसरे हस्त–कमल से उस भूत–भावन के प्रचंड चाप को चमत्कार पूर्ण उठाकर बाहर निकाल लिया तत्पश्चात् वे एक हाथ से धनुष को पकड़कर दूसरे हाथ से उसकी प्रत्यञ्चा को चढ़ाने लगे बस... चढाने के प्रथम ही श्रीरामजी के अल्पबल को भी न सहता हुआ, वह वज्रसार–कराल–कोदण्ड तीन टुकड़ों में उसी समय विभाजित हो गया तत्क्षण आकाश में नगाड़े बजने लगे, अप्सरायें नृत्य करने लगीं, पुष्पों की विपुल वर्षा होने लगी, देव गण जय–धुनि के साथ स्तुति करने लगे, शीतल–मन्द–सुगन्ध समीर बहने लगा और

सबके हृदय में आनन्द की अपरिमित लहरें उठकर आत्मा को आत्मसात करने लगीं। रघुनन्दन के चमत्कार पूर्ण-कार्य से मुनियों का समाज पुलकाङ्कित हो गया, लक्ष्मण कुमार की हर्षध्वनि उनके रोम-रोम से निकलने लगी। श्री दाऊजी प्रजापुरवासियों समेत सफल-मनोरथ होकर आनन्द-सिन्धु में संलीन हो गये।

श्री सिद्धिजी : चतुर्दश-भुवन-व्यापिनी धनु-ध्वनि से मुझे भी कर्ण मूंद कर आश्चर्य-सागर में समा जाना पड़ा, आनन्द ने भी अपने में ओत-प्रोत कर लिया किन्तु अन्तःपुर की गंभीरता के जलाशय में निमग्न मैं यह समझ न पाई कि मेरा-महान-मनोरथ पूर्णता को प्राप्त हो गया है। अहा..... ! धन्य हो गई मैं ! हाँ नाथ ! फिर क्या हुआ ?

श्री लक्ष्मीनिधिजी : प्रिये ! श्रीरामजी महाराज धनुष का खंडन करके हर्ष और विषाद का किञ्चित स्पर्श न करते हुये शम में सर्वभावेन सहज ही संस्थित रहे। त्रिभुवन समेत वहाँ के सम्पूर्ण ऋषि-मुनि और राजा महाराजा श्रीरामजी को असाधारण समझकर आश्चर्य में निमग्न हो गये पुनः धैर्य धारणकर श्री रघुकुल राम की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुये अपने नेत्र-पुटों से उनके मोहक-मधुरिम-रूप की मधुरिमा का पान प्रेम पूर्वक करने लगे। हम दोनों पिता-पुत्रों समेत समस्त मिथिलापुरवासी उस अलौकिक-अतीतानन्द का अनुभव कर करके अपने को सर्वथा भूल गये ! वह समय परम विचित्रता से भरा हुआ परमाश्चर्यमय था।

श्री सिद्धिजी : हे हृदयानन्दवर्धनजू ! पूज्य पिताजी के प्रण के अनुसार वीर्यशुल्का विदेह-राजनन्दिनीजू विजय और कीर्ति के साथ श्री अवधेश कुमार रामभद्रजू को संप्राप्त हो गई, इसे त्रिभुवन जान गया, किन्तु कन्या का समर्पण वैदिक विवाह-विधि से सम्पन्न होता तो सबको अत्यन्त आनन्द की समुपलब्धि होती। हमारे लोभी-लोचन श्रीराम-जानकी को बनरा-बनरी के वेष से विभूषित कोहवर-भवन में विहार करते हुये देखने के लिये ललक रहे हैं। कब मैं कोहवरकक्ष के सकल विधि कैंकर्य कर-करके अपने को कृतकृत्य समझूँगी।

श्री लक्ष्मीनिधिजी : प्रियतमे ! श्री राम जी के कर-कंजों से धनुर्भङ्ग होते ही श्री विश्वामित्र जी महाराज के आदेशानुसार, श्रीमान् परम पूज्य पिताजी ने कुछ ब्राह्मणों व कुछ सेवकों को श्री शतानन्दजी महाराज के साथ बरात सहित श्री चक्रवर्ती कौशल-नरेश को बुलवाने के लिए कौशल-पुरी भेज दिया है। विवाह मण्डप का निर्माण कराने एवं नगर को विविध प्रकार से सुसज्जित कराने के लिए कुशल-कलाकारों को, जो स्वबुद्धि के सत्प्रयोग द्वारा यथाशक्य अपनी कला से विधि को विस्मय उत्पन्न कराने वाले हैं, नियुक्त कर दिया गया है, इसलिए हम लोग रस के आलबाल में आरोपित अपनी आशा-बेलि को बहुत शीघ्र पल्लवित और प्रपुष्पित देखेंगे। शंका का राहु मिथिला के भाग्यार्क का स्पर्श नहीं कर सकता। अब तो प्रत्येक क्षण प्रत्येक ओर आनन्द ! आनन्द !! आनन्द !!!

श्री सिद्धिजी : भगवत्-कृपा को धन्य है, वह अपने अकिंचन अनुयायियों के असाध्य और असंभव को साध्य एवं सम्भव बनाने में ही अपना प्रयोजन और अस्तित्व समझती है। दया-सिन्धु की दया से अब व्योम और वसुन्धरा आनन्द से ओत-प्रोत होकर अन्तर-हीन हो जायेंगे। अहो ! अरण्य-सेवी ब्रह्मनिष्ठ-तपस्वी, स्वर्ग-सुख के सम्भोक्ता

सुरगण एवं सुर-सुन्दरियाँ, सार्वभौम सत्ता के अभिमानी-अवनि-पति और नागलोक के विपुल-वैभव वाले वरण्य, मिथिला-वासियों की सुख-सम्पत्ति का सम्मान एवं सराहना करके उस सुख के सुखांश की अनुभूति करने के लिए विदेह-पुरी की खोर-खोर में परिभ्रमण करेंगे।

श्री लक्ष्मीनिधिजी : हम दोनों की आत्मा, अपनी आत्मा का मात्र अनुसंधान करके जब आनन्द से आवृत होकर अपना अपृथक अस्तित्व नहीं रख सकती, तो उस परमात्मा का स्नेह-स्पर्श अत्यन्त निकटतम-प्रान्त में नित्य-नित्य प्राप्त कर हम लोग क्या से क्या हो जायेंगे, कुछ कहा नहीं जा सकता। श्याम सुन्दर रघुनन्दन के मुख्य-मुख्य चरित्र पर अनुक्रम से बुद्ध्यानुसार किंचित चिन्तन करने पर जब अतीतानन्द का अनुभव हृदय करने लगता है तब उन उदार-शिरोमणि के साथ मज्जन, अशन और शयन करने से क्या होगा चित्त के चिन्तन का विषय नहीं है।

श्री सिद्धिजी : प्राणनाथ ! जब से मैं बना-बनी की बनी, मेरी तो खूब बनी। अहा......

[श्री सिद्धिजी अपने आनन्द का सम्वरण न कर सकीं और उस कल्पनातीत आनन्द को भाव-विभोर होकर अपने मधुर-स्वरों द्वारा व्यक्त करने लगीं....]

पद : दूलह दुलहिन वेष को धारे।
नयन विषय बनि हैं कब प्रियतम, लाडिली-लाल हमारे।
करि पद-प्रक्षालन राम-सिया को, आपु सहित सब वारे।
अति आनन्द की अनुभूति हृदय कर, सहजहिं जगत बिसारे।
हर्षण ब्याह-विभूषण भूषित, झाँकी अनुप अपारे।

अहो ! विवाह-काल में दूलह-दुलहिन की दिव्य झाँकी, झाँक-झाँककर नयनों ने नेह-नीर से नव-दूर्वादल तनु-श्याम का जब पाद-प्रक्षालन करूँगी तब अपरिमित-आनन्द की अनुभूति होगी, उस अतीतानन्द की कल्पना ही मुझे स्मृति से पृथक कर रही है। मेरे प्रणयावलोकन को ही अपनी पूर्ण-पूजा समझकर मेरे ननँद-ननदोई परम प्रसन्नता से मुझे अपनी कहकर पुकारने में किंचित संकोच न करेंगे ऐसी अपनी प्रतीति है क्योंकि जन-मन-मानस हंस का उच्चतम-विवेक अपने भक्तों के दोष-जल को न ग्रहण कर नाम मात्र गुण के दूध को पीने के लिए प्रेरित करता रहता है।

श्री लक्ष्मीनिधिजी : प्रियतमे ! हम अपने भगिनी-भाम के जन्म-जन्म के भ्राता और श्याल हैं, हमारा और उनका सम्बन्ध आगन्तुक नहीं है। इसी अर्थ को अनुमोदन और समर्थन करने वाले सद्गुरु के वाक्यों का विश्वास मुझे प्रभु-प्राप्ति के प्रशस्त-पथ पर अग्रसर कर रहा है एवं आप भी मेरी सहज सहचरी हैं अस्तु आपका सम्बन्ध भी श्री युगल-किशोर से स्वाभाविक ही है। भद्रे ! सत्य, सहज और अनागन्तुक सम्बन्ध में असत्यता, असहजता और आगन्तुकता का प्रवेश उसी भाँति नहीं होता जैसे सूर्य में अन्धकार का प्रवेश।

श्री सिद्धिजी : हे आर्यनन्दन जू ! मन की एक कोमल-कल्पना चित्त के झूले में झूल रही है जिसका आन्दोलन अनवरत-अबाध गति से चल रहा है कहिये तो प्रार्थना करूँ ?

श्री लक्ष्मीनिधिजी : प्रिये ! आप धर्म को धारण करने वाली धर्म–मूर्ति हैं क्यों न इस प्रकार की भाव भरी वार्ता कहें। आप अवश्य अपनी कल्पना मेरे समातुर–श्रवणों तक पहुंचायें। नीले रंग के सौन्दर्य -सार समुद्र से ऊँची–ऊँची भाव की तरंग–मालाओं का स्पर्श सम्मिलित होने वाली सरिता में सदा संदर्शित होता रहता है। अस्तु अवश्यमेव आप अपने हृदगत्–भावों की लहरों से मुझे संसिक्त किये बिना न रहें।

श्री सिद्धिजी : प्राणनाथ ! किंकरी के हृदय में यह विचार बारम्बार उद्‌भूत होता है कि आप अपनी भगिनि के विवाह काल में पाद–प्रक्षालन करते समय अपना सर्वस्व श्री रामजी महाराज को सर्वभावेन समर्पित कर दें यहाँ तक कि अपना भावी–राज्याधिकार भी श्री किशोरीजू के सेवार्थ समर्पण हो जाय। हमें प्रेमास्पद के प्रसन्नतार्थ तत्–सुख–सुखित्वम् की भावना से भावित नीच–टहल करके उनकी पत्तल–झारी उच्छिष्ट–प्रसादी सेवन कर एवं उतारे हुए फटे–पुराने–वस्त्रों को पहन कर दम्पति श्री के विकसित मुखाम्भोज को देखते हुए जीना पडे तो बडे भाग्य का विषय होगा।

श्री लक्ष्मीनिधिजी : (प्रसन्नता से भरकर हृदय से लगा लेते हैं....) प्रिये ! वास्तव में आप प्रेय से श्रेय की ओर ले जाने वाली, परमार्थ–प्रदर्शिका सत्–पत्नी हैं। ऐसा समुचित–सारगर्भित–सुझाव देना, आपके स्वरूपानुकूल ही है। ऐसे ही विचार मेरे हृदय में दीर्घ–काल से घर बनाकर बसे हुये हैं, अनेक प्रलोभनों द्वारा प्रयत्न करने पर भी वे उर–गृह से निकलना स्वीकार नहीं करते। अब आपकी अनुमति के अवलम्बन का प्रबल- सम्बल प्राप्त कर उनका निष्कासन अधिक असाध्य और अशक्य है । अस्तु समय पर उन सद्‌विचारों का सदुपयोग सर्वभावेन सम्यक प्रकार से सम्भव होगा ऐसी अपने मन की केवल पूर्ण प्रतीति ही नहीं अपितु बुद्धि का विमर्श एवं आत्मा की स्वरूपानुरूप स्थिति है।

श्री सिद्धिजी : हे हृदयेश्वर ! मैं यह जानती थी कि प्रियतम अपनी गम्भीरता के कारण अपने विचार व्यक्त करने में असमर्थ हैं। समय पर ही सद्‌विचारों की साकारता सबके सामने प्रत्यक्ष होती है, यदि प्राणनाथ के हृदय में इस वार्ता का बीज न होता तो दासी के उरालय में उसका उद्‌भूत होना सर्वथा अ सम्भव था किन्तु मैं अपने हृदयोद्‌गार को संभाल न सकने के कारण आतुरता वश प्रार्थना कर बैठी। दासी के चाञ्चल्य को क्षमासिन्धु क्षमा करेंगे।

श्री लक्ष्मीनिधिजी : प्रिय प्रेरिके ! आप मेरी प्रेरणात्मिका शक्ति हैं अस्तु, शुभप्रद- कार्य करने की प्रेरणा देना आपके स्वरूपानुरूप है। आप जैसी पत्नी के पतित्व को प्राप्त कर मैं नर से नारायण हो जाऊँ तो कोई असम्भव नहीं । क्षमा की क्या वार्ता ? आप तो मुझे अहं और मम से पृथक कर, मेरे सहज स्वरूप में नया - निखार और नयी चमक लाने का प्रयत्न कर रही हैं।

श्री सिद्धिजी : प्राणनाथ ! पलक बिछाये बैठी हूँ मैं कि कब वह मुहूर्त आयेगा जबकि ब्याह–मण्डप की ब्याह–वेदिका पर बिराजे हुये युगल–किशोर का दर्शन भर नेत्र आपके सहित करूँगी। अहो ! उस आनन्द का अपरिसीमन, देह, इन्द्रिय–मन, बुद्धि आदि प्राकृतिक संघात को अवश्यमेव अप्राकृतिक–तत्व में विलीन एवं तद्रूप करके, जड़–चेतन के भेद को अभेदत्व में परिवर्तित कर देगा।

श्री लक्ष्मीनिधिजी : आर्ये ! अब वह समय सन्निकट है जिसको प्राप्तकर हम अपने जीवन–सर्वस्व के प्रेमोपहार में अपने नाम की, उन्हीं की सर्वस्व–वस्तु को उन्हीं के

सुख के लिए बिना ममाहं के सादर समर्पित करके निश्चिन्त हो जायेंगे। अहो ! अपनी प्रियतमा का मुखोल्लास–विवर्धन अब तदीय जनों के कैंकर्य लाभ से भी मुझे वंचित न रख सकेगा। आनन्द ! आनन्द !! आनन्द !!!

श्री सिद्धिजी : हे आर्यनन्दनजू ! आप तो बहुत पहले से निर्मम और निरहंकारी हैं। सर्वभावेन–सर्व–समर्पण भी अपने परम प्रिय प्राणेश को बाल्यावस्था से ही किये हुये बैठे हैं ! प्राणनाथ के प्राक–प्रेम का प्रदर्शन भी दासी को अवशेष नहीं। रही मेरे मुखोल्लास की बात......तो वह भी आप श्री के मुखोल्लास से ही उल्लसित है, क्योंकि बिम्ब का प्रतिबिम्ब ही दर्पण में दृष्टिगोचर हो रहा है।

श्री लक्ष्मीनिधिजी : प्रिये ! जैसे विवाह–काल से ही कोई बालिका अपने आराध्य–पति–परमेश्वर को सर्व–समर्पण किये बैठी हो किन्तु सोहाग–रजनी में उसका वह सर्व–समर्पण साकार होकर प्रथम–समर्पण से कुछ और ही रस और तज्जनित आनन्द उत्पन्न करता है; उसी प्रकार प्रभु–प्राप्ति के प्रथम का सर्व–समर्पण प्राप्ति–दशा में कुछ और ही आर्द्रत्व और सान्द्रानन्दत्व से संयुक्त होकर आत्मा और परमात्मा की संयोग जन्य–अनुभूति का विषय बनता है।

श्री सिद्धिजी : प्राणनाथ ने आज अपने अमृतोपम–संदेश से किंकरी के हृदय को हरा कर दिया है। अस्तु आपके श्री युगल–पाद–पद्मों में मेरा अनन्तशः प्रणाम है। कृतज्ञता प्रकट करने के लिये अनुरूप कोई सुन्दर शब्द नहीं। रात्रि विशेष हो गई है, अतएव शयन–कक्ष में पधारने की दासी की प्रार्थना स्वीकार हो प्रभो !

श्री लक्ष्मीनिधिजी : हाँ, हाँ प्रिये ! आनन्द–वार्ता में समय का ज्ञान ही न रहा। अब चलकर विश्राम करना चाहिये जिससे प्रभु–कैंकर्य में कोई प्रत्यवाय न हो।

[दोनों उठकर शयन–कुंज में पधारते हैं।]

पटाक्षेप

....

अष्टविंशः दृश्यः २८

(श्री लक्ष्मीनिधिजी बारात आने के प्रथम, श्री विश्वामित्र जी महाराज के सम्मत से सुन्दर–समय को पाकर सानुज श्री रामजी महाराज को रथ में बैठाकर नगर प्रदर्शन करा रहे हैं। श्रीसिद्धि कुँअरिजी सिद्धि-सदन की उच्च अट्टालिका में सखियों से समावृत सिंहासनासीन हैं।)

श्री सिद्धिजी : चित्रे ! कैसा सुन्दर–सुहावना-सुमनोरम समय है, किरण माली की किरणों में उतनी उष्मा नहीं रह गई है, जितनी मध्याह्न–काल में थी। अब तो मुहूर्त–मात्र में भगवान भास्कर अपने अस्ताचल का आश्रय लेने के लिये आतुरतया प्रस्थान करने वाले हैं। अहो ! भगवान की भासा से ही तो मायाकृत संसार का नानात्व सत्य के समान भासित हो रहा है अन्यथा सत में असत और एक में अनेक कहाँ ? हाँ .....अनेक में एक का होना उसी प्रकार उचित है, जैसे अनेक घटों में पार्थिकत्व का।

चित्राजी : स्वामिनीजू ! समय की सुरम्यता एवं सुखावहता की अनुभूति से लगता है कि हम लोग परमानन्द की ओर प्रवेश कर रही हैं।

श्री सिद्धिजी : (औचक कान लगाकर) चित्रे ! मधुर-मधुर वाद्य-धुनि के साथ जय-घोष, विरुद-व्याख्या, रमणी-मुख-विनिश्रित मंगल-गीत और विप्रों द्वारा वेद ध्वनि श्रवणों में समा रही है। सुन-सुनकर हृदय हर्षायमान हो रहा है। मालूम होता है, कि यह पंच- ध्वनि इधर ही अविलम्ब आ रही है। ध्यान से सुनो न !

चित्राजी : (कुछ क्षण निःशब्द रह कर) हाँ, हाँ, कुँअर वल्लभे ! आपका अनुमान सर्वथा सत्य है। अत्यन्तानन्द को विस्तीर्ण करने वाला शब्दायमान-समाज समीप में आ गया है। ऐसी प्रतीति होती है कि शीघ्र ही वह हमारे सामने से मार्ग का अनुगमन करके, हम लोगों को अपनी अनुभूति कराये बिना न रहेगा।

श्री सिद्धिजी : आज हमारे जीवन-धनजू ने कहा था, कि चक्रवर्ती-कुमार सानुज श्री रामभद्रजू को पुर में प्रवेश कराकर, सबको लोचन-लाभ से समन्वित करना है। हो न हो, संभवतः वही इधर आ रहे हों, आली। अहा ..... ! आनन्द वायु के झोंके, हृदय-सिन्धु में अधिकाधिक आन्दोलन मचा रहे हैं।

चित्राजी : आर्ये ! इधर ही तो समाज से समाकीर्ण शब्दायमान सुन्दर रथ आ रहा है। वह देखें..... । अहा..... ! अश्वों समेत यान की नव्यता एवं भव्यता, भानु-यान के तेज-श्री को विलज्जित करती हुई, चित्तापकर्षिणी का कार्य कर रही है। अरे ! अपने मिथिलेश-कुमार ही तो अपनी आभा से आलोक-प्रदान करते हुये, सारथी के आसन को सुशोभित कर रहे हैं।

श्री सिद्धिजी : अवश्य, अवश्य, प्राणनाथ के पीछे रथी के आसन को अलंकृत करते हुये श्याम-गौर-वपु वाले सुन्दर दो राजकुमार ही दशरथ-नन्दन हो सकते हैं, चित्रे ! आली..... मैं कहाँ हूँ इस समय ? अहा... यह आगे बढ़ता हुआ सौंदर्य-सागर मुझे अपने में आत्मसात किए बिना न छोड़ेगा। आश्चर्य ! आश्चर्य !! यह माधुर्य-महोदधि मैं और मेरे का चिन्ह भी न रहने देगा क्या ? इस सौकुमार्य-सिन्धु ने तो मुझे बिना मन के कर दिया ! अरे, अरे, मुझे यह क्या हो रहा है ? हाय... हृदय कहाँ चला गया ? बुद्धि भी विलीन हो गई। हाय... हाय ! वाणी भी विराम ले रही है, शिथिलता भी शरीर में अपना आधिपत्य जमा रही है। अहो ! यह विश्व-मोहिनी झाँकी विश्व-वन्द्या तो अवश्य है, किन्तु अलौकिक और असमोर्ध्व-सौन्दर्य की राशि-राशि बिखेरती हुई, विश्व के शब्द- कोष में विश्व का नाम न रहने देगी क्या ? हाय... स्मृति -हीन चित्त से नेत्रों की दृक् - शक्ति को जब अपना प्रति-सम्बन्धी बनाने की प्रेरणा ही न प्राप्त होगी, तब इस झाँकी के निर्माण का प्रयोजन ही व्यर्थ हो जायगा।

[सात्विक-भावों के प्राबल्य के कारण, इतना कहते कहते श्री सिद्धिजी बेसुध, पछाड़ खाकर गिर जाती हैं । सखी चित्रा उपचार द्वारा उन्हें प्रेम-मूर्छा से विगत कराने का प्रयास करती हैं।]

चित्राजी : (उपचार द्वारा सचेत करके) कुँअर- बल्लभे ! अपने प्राण-पति के प्रिय प्राणों को साकार रूप में सम्यक् प्रकार से देखने के सुअवसर को न चूकें। आप अपनी आंखें आतुरता के साथ खोलें, रथ समीप आ गया है। विदेह-वंश-

वैजयन्ती श्री विदेह–राज–नन्दिनीजू के कर–कमलों से जयमाल को धारण करने वाले श्याम सुन्दर रघुनन्दनं राम रथारूढ़ होकर अपने सौंदर्य–माधुर्य, सुधा–सुशीतल बदन–विधु की शुभ्र ज्योत्स्ना चारों ओर छिटकाते हुए सामने से आ रहे हैं। अहो ! विश्व- विमोहन एवं विश्व- वन्द्यनीय राजिव–लोचन राम विश्व के प्राण होने के कारण समस्त प्राणियों को प्राण–प्रिय हैं। इनका दर्शन- स्पर्शन मृत्यु की विभीषिका से भयभीत विश्व को अमर बनाने वाला है। अस्तु, उठें, उठें, लोक लोचनाभिराम का दर्शन कर लोचन लाभ लें।

श्री सिद्धिजी : (आँखें खोलकर) आली ! यह सुख–सुषुमा- श्रृँगार की मन–मोहिनी–मूर्ति किसके मन को मोहित न कर लेगी ? मैं तो समझंती हूँ कि रती, रमोमा, शची, शारदा भी इन्हें देखकर, अपने को सम्हालने में असमर्थ ही रहेंगी, फिर साधारण–नारियों की कथा ही क्या ? नारी ही नहीं, विधि–हरि–हर समेत कामदेव का मन भी मंथित हुए बिना नहीं रह सकता तो अपर पुरुषों की कहानी क्या कहें। अहो ! पुं–प्रकृतिमय विश्व के स्त्री–पुंसा–मोहन स्वरूप की बलिहारी है, बलिहारी।

चित्राजी : स्वामिनीजू ! सुनती हूँ मैं, कि बडे बडे ब्रह्म–विद्–वरिष्ठ–वीतराग-ज्ञानी- मुनि भी इन्हें देखकर रागी बन गये हैं और इनके अदर्शन से अपनी अतृप्त आँखों की असहिष्णुता का अनुभव कर–करके विरह-वह्नि में झुलस रहे हैं, प्रत्यक्ष में प्रमाण क्या ? ज्ञानियों की गढ़ ज्ञानपुरी का कोना कोना इनके रूप की अग्नि से भस्मीभूत हो गया है।

श्री सिद्धिजी : चित्रे ! वास्तविक वार्ता है यह, प्रत्यक्ष में अन्य प्रमाणों की क्या आवश्यकता। अदृष्ट–पदार्थ–वेत्ता लोग आप्त और अनुमान–प्रमाण की अपेक्षा रखते हैं। अहा..... मेरी प्रियतमा ननँद का भावी प्रीतम प्राणिमात्र को प्रिय लगने वाला प्राणों का प्राण है, जिसका अनुभव मेरा मन पूर्णतया कर रहा है। अहो ! देखो न मिथिला के जडात्मक–वर्ग को, लगता है कि इनमें श्रीराम भद्रजू के दिव्य-दर्शन ने दिव्यता एवं भद्रता के साथ चेतनता का समावेश कर दिया है।

चित्राजी : कुँअर- वल्लभे ! यह पुंसा–मोहन–स्वरूप–सागर अपने में अपने द्वारा अपने ही कल्लोल करता हुआ, मैथिल–नारियों के नाम–निशान को निःशेष करने पर ही तुल गया है क्या ? अहो... यह चौर्य-पटु आज सबके देखते–देखते, अपने "विश्व-विलोचन- चोर" नाम को सार्थक कर रहा है, वह भी धूम मचाते हुये दिन–दहाडे ।

श्री सिद्धिजी : चोरी तो लुक–छिपकर होती है, सखी ! इसको डाका कहो न डाका। जरा इनकी जालिम-जुलुफों की ओर तो देखो। रसिकों के प्राण हरण करने में उतारू होने के कारण इन्हें जुलमी और जौहरी भी कहें तो कोई अतिशयोक्ति न होगी।

दोहा : कारी कारी कुंचिता, अलकैं अँतरनि बोर।
रसिकन प्राण प्रहारिका, रसिया दीन्हेव छोर।
जुलुफैं छूटी छवि भरी, हर्षण कहर मचाय।
मुख-सरोज मकरन्द हित, अली अवली मेड़राय।

चित्राजी : अनेक रत्नों से जटित जगमगाता हुआ स्वर्ण–मुकुट श्याम सुन्दर के शीश पर सुशोभित हो रहा है। अहो ! महा सुमेरु के स्वर्णिम–शिखर पर कोटि–कोटि सूर्यों का प्रकाश–पुञ्ज पड़ने की जगमगाहट, जिसके सामने संकुचित होकर, समता करने की सामर्थ्य नहीं रखती तो उसकी तुलना में अन्य तेज की उपमा देना उपमान का अनादर ही है।

दोहा : स्वर्ण-मुकुट रतनन जटित, श्याम कुँअर सिरसोह ।
रवि अनन्त आभा हरत, दृष्टा के मन मोह ।।

श्री सिद्धिजी : अरी चित्रे ! रघुनन्दनजू का तिलकांकित भव्य-भाल भहर-भहर करता हुआ, केशर के खौर से चर्चित ऐसा लग रहा है जैसे अर्ध-चन्द्र में पीत-रेखाओं से चारु-चित्र निकाले गये हों। अहा हा..... ! लगता है कि यह तिलक क्या ? अरे .... यह तो वशी-करण नामक एक विशिष्ट यन्त्र ही है।

दोहा : भव्य-भाल में लस रही, सहित तिलक श्री खौर ।
अर्ध-चन्द्र चित्रावली, मनहु चतुर चित-चोर ।।

चित्राजी : स्वामिनीजू ! भाल के निम्न-भाग में भृकुटी की भव्यता तो मनोज-धनु की छवि छीने ले रही है, जिस पर नयन-बाण के चढाते ही विश्व एक मात्र वनिता के रूप में परिवर्तित हो जाता है। अहो.... ! भ्रू-कौटिल्य से कोटि-कोटि कन्दर्प-दर्प-दमनकारी कौशिल्या नन्दवर्धन किसको क्या नहीं कर सकते।

दोहा : वंक भृकुटि मन-मोहिनी, मदन-चाप छबि हारि ।
चढ़त नयन-शर नारि बन, त्रिभुवन अपुहि बिसारि ।।

श्री सिद्धिजी : आली ! लोक-लोचनाभिराम रघुनन्दन रामभद्रजू के लोचन, कंज-खंज-मृग-मीन के मद को हरण करने वाले शीतल-सुधा से सम्पन्न कारे, कारे, बड़रे-बड़रे कैसे अनियारे और अनोखे लग रहे हैं। अहो ! इन नेत्रों का सार-गर्भित सौन्दर्य वर्णन करने के लिये, मेरे नयनों में वाक-शक्ति का आवास होता तो क्या अच्छा होता।

दोहा : कजरी-बड़री श्रवण लौं, श्वेत श्याम रतनार ।
अमिय हलाहल मद भरी, अँखिया अली निहार ।।

चित्राजी : स्वामिनीजू ! अवध छैल की अनियारी-आँखों के दर्शन से जीना-मरना एवं झुक-झुककर झूमना तो एक साथ होता ही है, किन्तु चितवनि की कला तो काम के चित्त को भी चुराने वाली अनुभव करते ही बनती है, न जाने चितवनि में जादू है या टोना।

दोहा : चितय चारु चितवनि चतुर, केहि के चित न चोराय ।
दृष्ट-चित्त अपहारिणी, कला कुशलता छाय ।।

श्री सिद्धिजी : मेरी सहेली, देखो न ! मन-मोहन के कर्णों में मकराकार कुण्डल कैसी छव्याछत्र उपमा उत्पन्न कर रहे हैं, ऐसा लगता है कि मधुर-मधुर दो मदन-मीन, दो श्याम सुक्तियों को मुख से पकड़कर पृथक-पृथक अमृत-कुण्ड में किलोल कर रहे हों।

दोहा : मीना कृत कुण्डल श्रवण, मनहु मदन के मीन ।
श्याम सुक्ति मुख मेलि के, करत केलि रस भीन ।।

चित्राजी : कौशलेन्द्र कुमार की सुन्दर सुडौल-शुकाकार नासिका सर्वाङ्गीण भव्यता से पूर्ण कैसी सहज सुहावनी लग रही है। अहो.... ! नक-मौक्तिक की छवि को कहना ही क्या है। वह नासिकाग्र-भाग में झूमती हुई, अरुणिम-अधरों के अमृतास्वाद के लिये बडी चंचलता के साथ प्रयत्नशील है। अहा ! नासामणि के सौभाग्य को देखकर किस नेत्रवान का जी तद्रूप बन जाने के लिये न मचल पड़ता होगा।

दोहा : शुकाकार शुभ-नासिका, तेहिं पै मुक्ता लोल ।
अधर अमिय आस्वाद हित, करत प्रयत्न अतोल ।।

श्री सिद्धिजी : अहो ! अमृत से ओत–प्रोत अरुणारे–अधरों की अनूठी छवि मन्द–मन्द मुसकान के साथ किसके मन में लोभ न पैदा करेगी ? अपनी श्री राजकिशोरीजू के कितने बड़े भाग्य हैं, जो इनका स्वच्छन्दता के साथ अहर्निशि अनुभव करेंगी, आली !

दोहा : अरुण अरुण अमृत अधर, तेहि पै मृदु मुसकान ।
को न मोह लखि सकृत सखि, भूलि अपनपौ भान ।।

चित्राजी : हे कुँअर–वल्लभे ! कपोलों की कमनीयता कहते नहीं बनती, वह तो अनुभव करने ही योग्य है। अहा.. ! अरुण और श्याम रंग से मिश्रित चिक्कन–चिक्कन चमकते हुये गंडस्थल में रसपूर्ण गदरीले अंगूरों की भ्रान्ति से किसका मन–शुक अपनी चोंच–प्रहार के द्वारा उसका आस्वाद लेना न चाहेगा।

दोहा : अरुण–श्याम रस से भरे, चिक्कन चमक कपोल ।
सम अधपक अंगूर के, लखि मन–शुक चित डोल ।।

श्री सिद्धिजी : सहेली, देखो न ! सुन्दर कपोलों में झूलते हुये कर्ण कुण्डलों का प्रतिबिम्ब कैसा सुहावना लग रहा है, मानों युगल मदन के मीन रस–पूर्ण सरोवर में केलि कर रहे हों।

दोहा : मकराकृत कुण्डल हलनि, झाई परति कपोल ।
मनहु मदन के मीन द्वै, रस–सर करत किलोल ।।

चित्राजी : स्वामिनीजू ! श्याम सुंदर की सुन्दर उदार ठोड़ी, कपोत के मान को मर्दन करती हुई, कैसी शोभायमान हो रही है। मुख–मंडल की आधार भूता होने के कारण, अपने स्पर्श की तीव्रतम कामना सभी के करों में उत्पन्न कर रही है।

दोहा : चारु चिबुक रस–राज कर, मुख–मयंक आधार ।
को न चहै पर्शन कियो, लखि दृग अतिहि उदार ।।

श्री सिद्धिजी : सहेली ! आनन्द कन्द की करि–करोपम आभूषणों से आभूषित आजानु–बाहुयें करज और करतल के साथ कैसी शोभा दे रही हैं। अहा..... ? अरुण और श्याम सरोरुह की कान्ति हस्त कमल की कमनीय कान्ति के सामने अकिंचित नहीं, तो तुच्छ अवश्य है।

दोहा : करि–कर सम रघुनाथ कर, लसत जानु लौं हेर ।
आभूषण भूषित अहो, अभयद व्रत तेहि केर ।।

चित्राजी : आर्य -नन्दिनी जू ! कण्ठाभरणों एवं हृदयहारों से श्री चक्रवर्ति–नन्दनजू का केकि–कंठ तथा वृहद–वक्षस्थल कैसी शोभा से सम्पन्न हो रहा है जिसे देखकर किसी के कंठ और हृदय सजातीयता के सम्बन्ध से मिलने के लिये आतुर हुये बिना नहीं रह सकते।

दोहा : विविध विभूषण भ्राजहीं, कंठ–हृदय अभिराम ।
जस लालच लागति हृदय, कहि न सकौं यहि ठाम ।।

श्री सिद्धिजी : चित्रे ! रघुकुल–कमल–दिवाकर दशरथ नन्दनजू के चरणाम्भोज यद्यपि बैठने के कारण छिपे हुये हैं किन्तु अपना अनुमान है कि जिनके मकरन्द का पान करने के लिये मुनियों का मन–मधुप सदा लालायित रहता है, उन सौन्दर्य–सार पाद–पद्मों का स्पर्श, आनन्द–सिन्धु में निमग्न कर परम–विश्रान्ति का अनुभव कराने वाला अवश्य होगा।

दोहा : जहाँ बसत मुनि–मन–मधुप, पी पद–पद्म–पराग ।
तेहि की शोभा को कहै, लखतहिं बढ़ अनुराग ।।

चित्राजी : आर्ये ! आर्य–नन्दन श्याम सुन्दरजू का सर्वाङ्गीण श्याम वपु–अनन्त सौन्दर्य, सौकुमार्य, माधुर्यादि दिव्य–दैहिक सम्पत्तियों से संयुक्त है। मन–मोहन के अनंग–मोहक किस–किस अंग की प्रशंसा करें। शरीर के जिस किसी अंग को लोचन लख लेते हैं, उसी अंग को अपना आश्रय बनाकर प्रयत्न करने पर भी, वहाँ से अन्यत्र जाने की इच्छा नही करते।

श्री सिद्धिजी : आली ! जैसी हमारी लाडिली लली श्री सियाजू हैं वैसे ही श्री चक्रवर्तीजू के लाड़िले लाल। अहा...... ! विवाहोत्तर इन दोनों की अनिर्वचनीय अनुभूति कर–करके, हम अलौकिक–आनन्द को प्राप्त करेंगी। सर्वेश्वरानुग्रहीता मुझे देखकर त्रि–देवियों का मन बिना स्पर्धा के न रह सकेगा।

चित्राजी : कुँअर बल्लभे ! वास्तव में आपके भाग्य की महा–महिमा बड़े–बड़े वक्ताओं से भी वर्णनातीत है, जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण सर्वभावेन संसार के सम्मुख समुपस्थित है।

श्री सिद्धिजी : अहा...... आली ! रथ आँखों से ओझल हो गया, नयनाभिराम नव–दुर्वादल–तन श्याम रघुनन्दन राम का हृदय से अनुभव करते हुये, हम लोग यहाँ से अब आवश्यकीय कार्य सम्पादन हेतु चलें न !

चित्राजी : स्वामिनीजू ! अवश्य, अवश्य ! सायंकालीन करणीय–कर्मों का अनुष्ठान होना चाहिये।

(अपनी सखी के साथ श्री सिद्धिजी प्रस्थान करती हैं।)

पटाक्षेप

....

एकोनत्रिंशः दृश्यः २९

[श्री चक्रवर्ती जी महाराज बारात के साथ मिथिला पधार चुके हैं। यथोचित सम्मान के साथ अगुआनी करके सुन्दर सर्वकालीन सुख प्रद जनवासा में बारात ठहरा दी गई है। लग्न से पहले बारात के आने से पुर में परम प्रमोद छाया हुआ है। श्री सिद्धिकुँअरि जी श्री लक्ष्मीनिधि से तद्विषयक आनन्द विभोर हो वार्तालाप कर रही हैं।]

पद : आई लगन ते पहिले बरात।
ताते पुर प्रमोद अधिकावत, सब सुख सिन्धु समात।
चहल–पहल ध्वनि पंच अहर्निशि, रस मय बनी घरात ।।
नभ ते सुरभ सुमन सुर वर्षत, कहि जय जय पुलकात।
हर्षण पुर नर–नारि मुदित मन, निरखत चारहु भ्रात ।।

श्री सिद्धिजी : (पद–गान के पश्चात्) अपने परम पूज्य पिताजी के आज्ञानुसार समाज को लेकर स्वयं "श्री" बारात की अगुआनी करने के लिये प्रत्युद्गमन किये थे, उभय पक्षों का मिलन बड़ा नयनाभिरामीय रहा होगा, प्रभो ! अहो ! इस आनन्द की कल्पना,

कल्पनातीत–आनन्द की ओर उन्मुख करके भव–रस के भान को भली–भाँति भुलाने में सक्षम हो रही है।

श्री लक्ष्मीनिधिजी : प्रिये ! अयोध्या–नरेश का ऐश्वर्य तो अमरावती के अधीश्वर इन्द्रदेव को भी विलज्जित करके, उनके गौरव–गरिमा को गलित कर रहा था भूमण्डल के महिपाल उनका अनुगमन उसी प्रकार कर रहे थे, जैसे देवराज का तैंतीस कोटि देवता। राज्य–श्री–संयुक्त रथारूढ़ श्रीमान् रघुकुल–नरेश, तपमूर्ति–अग्निवर्चसी अपने कुलगुरु श्री वशिष्ठजी महाराज के साथ सुरगुरु समेत सुरपति के श्री–सम्पत्ति और तेज को तिरस्कृत करते हुये, अपनी आभा से प्रदीप्त होकर प्रचुर–प्रकाश के द्वारा अपने निकटवर्ती–प्रान्त को प्रकाशित कर रहे थे। बारातियों के बीच उनकी शोभा नक्षत्रों के बीच सोमदेव के सदृश प्रतीत हो रही थी। बड़े सुन्दर बनाव के साथ बारात की विलक्षणता तथा वाद्यों की तुमुल–ध्वनि के साथ मांगलिक जय–नाद, गगन–भेदी बनकर अवनी और अन्तरिक्ष को निनादित कर रहा था। सुनते ही अगुआनिकों के शरीर फूल–फूल कर उत्तरीय–वस्त्रों की तनियों को ढीला करने के लिये बाध्य कर दिये थे, सबके हृदय–सरोवर में बाढ़ आ जाने से जल, लोचन–पनालों से प्रवाहित होने लगा। सभी लोगों के लालची–लोचन अवध–राज के वैभव–वैशिष्ट्य एवं बारातियों की सुघरता को देखकर प्रसन्नता से भर गये। पुनः प्रथम से ही निर्दिष्ट सुन्दर– विस्तृत सम–भूमि में परस्पर दोनों दल मिलकर अत्यंन्तानन्द का अनुभव करने लगे। अपनी ओर से सादर–समर्पित भेंट को श्री मन्महाराज कौशल नरेश ने यथोचित विभाजन कर सभी बारातियों के विकसित–वदनाम्भोजों में अधिकाधिक सौरभ का संचार कर दिया, शेष में सभी याचकों को उनकी अभिलाषा से अत्यधिक दे–देकर, उन्हें संतोष के सिंहासन पर प्रतिष्ठित कर दिया। तदोपरान्त प्रार्थना पूर्वक सादर सम्मान के साथ पंच–शब्दों की ध्वनि से सबके उर को उल्लसित करते हुये, बारात को जनवासा में ठहरा दिया गया है। प्राण–वल्लभे ! जिससे सुख की सम्पूर्ण सुविधायें सबको सर्वकाल में संप्राप्त रहें, विश्वास के साथ रुच्योत्पादक प्रबन्ध पूर्ण प्रयत्नतया किया गया है।

श्री सिद्धिजी : हे आर्य–नन्दनजू ! आप को श्री चक्रवर्तीजी महाराज का वात्सल्य–रस से ओत–प्रोत पूर्ण प्यार भी प्राप्त हुआ होगा न ?

श्री लक्ष्मीनिधिजी : हे आर्य–नन्दिनीजू ! ज्यों ही मैंने श्रीरामजी महाराज के पूज्य पिताजी के चरणों में प्रदक्षिणा करके प्रणाम किया, त्योंही उन्होंने मुझे बरबस अपने बरद–हस्तों से उठाकर, अपने आनन्द–दायिनी अंक में ले लिया और अनेक भाँति से अपना अनिर्वचनीय दुलार देकर कहा, कि "वत्स तुम मुझे अपने कुमारों के समान ही परम प्यारे हो", अमृतोपम वाणी को श्रवण करते ही मैंने अपने को अमृतास्वाद का आनन्द लेते पाया। रघुकुल–गुरु श्री वसिष्ठ जी महाराज का कर–कंज भी दण्डवत करते ही मेरे शिर पर सस्नेह स्पर्श करने से न रुका। पुनः शिर–अवघ्राण करते ही मैंने विद्युत प्रवाह जैसे ऋषि–प्रवर के ज्ञानालोक को अपने में उतरते पाया, तदनन्तर अनेक आशिर्वचनों से उन्होंने मुझे परमात्मा की परम प्यारमयी–करुणा पूर्ण–कृपा पाने का पुनीत कृपा पात्र बना दिया, जिससे मैं जगत में जीने का चरम–फल प्राप्त कर, अपने पूर्वजों के मुख–पंकज को विकसित करने वाला प्रियकर सूर्य बन गया। प्रिये ! मैंने अपनी आत्म–प्रशंसा नहीं की अपितु गुरुजनों के

महत्वपूर्ण आशीर्वादीय–वैभव का विवेचन किया है, जिसमें काक को कोकिल और बक को हंस बनाने की शक्ति सन्निहित है।

श्री सिद्धिजी : सौम्य ! आपके सुन्दर–स्वभाव–समुत्पन्न–शास्त्रीय–शिष्टाचार एवं श्री–हरि–गुरु–संतों का हार्दानुग्रह आपको त्रिकाल त्रिभुवन के आँखों का तारा तथा समूह प्राणि–वर्ग का परम प्यारा बना देने के लिये कृत–संकल्प है। जब अन्य से की हुई अपनी स्तुति श्रवण करते ही संकुचित एवं असहिष्णु प्रतीत होने लगते हैं, तब आप श्री आत्म–प्रशंसा की गहरी खाँई में अपने आपको क्योंकर झोकेंगे।

श्री लक्ष्मीनिधिजी : कल्याणि ! कल्याण–स्वरूपा श्री किशोरीजी की भ्रातृ–वत्सलता एवं कल्याण–स्वरूप, करुणा–वरुणालय, कृपासिन्धु रघुनन्दन राम के सौहार्द तथा उनकी भास्वती–भगवती कृपा से, मैं उनके अनुकूल होकर उनका कहा जाऊँ, तो इसमें आश्चर्य ही क्या ?

श्री सिद्धिजी : हे पुरुष सिंह ! परम–पुरुषार्थी वही है, जो परमात्मा के आनुगुण्य को ग्रहण करता है तथा पारतंत्र्य की पोशाक पहने हुये, अपने आङ्गीय हाव–भाव से परमेश्वर को प्रसन्नकर, उनकी कृपा–प्राप्त करने का पूर्ण–पात्र बन जाता है। अहो ! आपके परम पुरुषार्थत्व की पद–छाया का अनुगमन करने वाली, यह किंकरी कृतकृत्य हो गई।

श्री लक्ष्मीनिधिजी : प्रिये ! विषयान्तर की वार्ता छोड़िये। एक कर्ण–प्रिय कथा आपको और सुनाऊँ। वह यह है कि जैसे रूप–शील–गुण–ज्ञान–निलय श्रीराम और लक्ष्मण कुमार हैं, ठीक इसी प्रकार श्याम–गौर वपु वाले श्री भरत और शत्रुघ्न लाल नामक दो राजकुमार, श्री चक्रवर्ती दशरथजी महाराज के साथ हैं, जो श्रीरामजी के अनुज हैं, उन दोनों कुमारों का स्नेह भी मुझे वैसा ही प्राप्त हुआ है, जैसे आगे से अपने यहाँ आये हुये, सानुज श्री रघुनन्दन राम भद्रजू का।

श्री सिद्धिजी : प्राणनाथ ! भवदीय–वार्ता को श्रवण करते ही दासी के अंतर–जगत में एक आनन्दमयी–अभिलाषा उत्पन्न होकर, आपसे व्यक्त करने के लिये बाध्य कर रही है। पारतन्त्र्य के सहज सम्बन्ध से सम्बन्धित कोई भी सती–साध्वी–सत् पत्नी, अपने पति परमेश्वर की प्रसन्नता के प्रतिकूल वाणी का विसर्ग नहीं करती, प्रभो !

श्री लक्ष्मीनिधिजी : अपनी प्रियतमा के हृदयोद्गार सदा से शाश्वत सुख–संयोजक और कर्णातिप्रिय होते आये हैं अस्तु आपकी अन्तर–कामना की अभिव्यक्ति वैखरी वाणी द्वारा अविलम्ब हो जानी चाहिये। मैं श्रवण करने के लिये समाहित चित्त से समातुर समुद्यत हूँ।

श्री सिद्धिजी : बुद्धिवर्य के सम्मुख अपनी अल्प बुद्धि का विनियोग नहीं करती मैं, अपितु अपने मन में आये हुये मंजुल–मनोरथ को प्राणेश्वरजू के श्रवणों तक पहुँचाना चाहती हूँ। वह यह किजैसे श्री मन्महाराज कुमार श्री रामजी के तीन अनुज अपने जेष्ठ भ्राता के समान रूप–गुण–ज्ञान के निधान हैं, वैसे ही इधर श्री किशोरीजू की तीन अनुजायें माण्डवी, उर्मिला और श्रुति कीर्ति सर्व प्रकार से श्री भरत–लक्ष्मण और शत्रुघ्न कुमार के अनुरूप हैं अस्तु, लगता है कि श्री चक्रवर्तीजू के चारों कुमारों का विवाह एक मण्डप में चारों निमिकुल–कुमारियों के साथ हो जाता, तो अत्युत्तम होता। परिणाम में आनन्द का अपार अम्भोधि उमड़कर त्रिभुवन को निमग्न किये बिना न रहेगा, नाथ !

श्री लक्ष्मीनिधिजी : प्रिये ! आपकी अभिलाषा और अन्वेषण आनन्दोत्पादक है, मेरे मन में भी यही सुमनोरथ सानुज श्री भरतजी से आलिंगन करते समय समुत्पन्न हो गया था, किन्तु अपना वश क्या ? इसमें विधि का विधान ही बलवान है। श्रीमान् पूज्य पिताजी ही उक्त-सम्बन्ध के करने न करने में पूर्ण स्वतंत्र अधिकृत समर्थ हैं, हम सर्वदा उनके परतन्त्रतया स्वेच्छापूर्ण उपयोग में आने वाली उनकी निजी सम्पत्ति हैं अस्तु, अनधिकार-चेष्टा करना स्वस्वरूप से च्युत होने का सुदृढ़ साधन ही होगा। भगवद्विधान पर ही हम लोगों को परम प्रसन्नता की अनुभूति करना श्रेयस्कर और अनुकूल होगा, आर्ये। आपके आभिमत्य एवं अपने आनुमत्य का सामन्जस्य, आपकी विशद्-बुद्धि का विषय है, अन्यथा स्थूल-बुद्धि में मेरी वार्ता अपनी पत्नी के मन्जु-मनोरथ का आघात करने वाली ही प्रतीत होगी।

श्री सिद्धिजी : हमारे प्राणेश्वर के विवेकपूर्ण-विचार, बुद्धि-वर्य की बुद्धि के वैशद्य एवं कौशल्य का पूर्ण परिचय प्रकट करते हुए परमार्थ-पथ के पाथेय हैं, जिन्हें ग्रहण कर परिछाहीं की भाँति आपकी अनुगामिनी, यह परमार्थ-पथिका दासी भी दाम्पत्य-धर्मानुरूप उत्तम आचरण को अंगीकार करके परम परमार्थ-तत्व का केवल अन्वेषण ही नहीं प्रत्युत उस पूर्ण को पूर्णतया प्राप्त कर सकती है। संसार-सागर का संतरणोपाय तो उसमें सहज ही सन्निहित है।

श्री लक्ष्मीनिधिजी : मनोरमे ! मेरा मन मुझसे कह रहा है कि मेरी प्राण-वल्लभा का मधुर-मनोरथ महेश्वर अवश्य पूर्ण करेंगे। हम लोगों का भविष्य तो भक्त-भावन-भगवान के ही हाथ में है अस्तु, उसमें अमंगल के अणु-मात्र प्रवेश होने की आशंका का परित्याग दूर से ही किये रहना चाहिए। श्रद्धा और विश्वास से विश्वासनीय-श्रद्धेय की सम्प्राप्ति सहज ही सुलभ हो जाने में कोई सन्देह नहीं है, नरवरात्मजे !

श्री सिद्धिजी : महाप्राज्ञ ! अपने प्राणनाथ की परम प्रसन्नता ही तो मेरी अभीष्ट-अभिलाषाओं की सिद्धि के लिए स्वयं सर्वोत्तम उपाय है, इसलिए दृढ़ निश्चय के साथ समझ में आ गया कि कोहवर-कक्ष में चारों-निमिकुल-कुमारियाँ चारों चक्रवर्ति-कुमारों के साथ, उसी प्रकार से शोभा संयुक्त होंगी, जैसे चारों अवस्थायें अपने विभुओं समेत जीव के हृदय में विराजती हैं। प्रभो ! आपकी अत्यन्त अनुकम्पा से मैं उस अतीतानन्द का अनुभव करूँगी, जिसका स्वप्न बड़े-बडे योगियों को भी दुर्लभ ही नहीं अपितु अप्राप्य है। रस-स्वरूप का रसास्वाद-रसिक-जनों की भगवती-भास्वती-कृपा से ही सुलभ होता है। अहा..... ! चारों ननँद-ननदोईयों का समागम-सरोवर अपने आनन्द-सुधा से कोहवर-कुन्ज को प्लावित करके मुझ जैसी कितनी लताओं के शीशोत्थान का समय न देगा।

[स्मरण करते ही प्रेम-मूर्छा को प्राप्त होकर, श्री सिद्धि कुँअरिजी श्री मिथिलेश-कुँअर के अंक का आश्रय ग्रहण कर लेती हैं।श्री लक्ष्मीनिधिजी उन्हें उपचार द्वारा प्रकृतिस्थ करते हैं।]

श्री लक्ष्मीनिधिजी : (श्री सिद्धिजी के सचेत होने पर) प्रेममूर्ते ! आपका प्रेम पराकाष्ठा को प्राप्त कर प्रेमास्पद से भिन्न प्रेमिका की कोई स्थिति न रहने देगा। श्री सीतारामोद्वाह की किञ्चित कल्पना, जब हमारी प्रियतमा को भविष्यानन्द के प्रवाह में निमग्न कर देती है, तब अपने मंजु-मनोरथ के साकार होने पर प्यारी की प्रेम-दशा न जाने

कैसे-कैसे दिव्य-दृश्यों का दर्शन करायेगी। धन्य है कल्याणी के रामानुराग को, जो वज्र-विलज्जित मेरे हृदय को पानी-पानी कर देने के लिए पर्याप्त है।

[कहकर श्री लक्ष्मीनिधिजी अर्ध-चेतनावस्था को प्राप्त हो जाते हैं।]

श्री सिद्धिजी : (प्राणनाथ को सचेत करके) सौम्य ! प्राणनाथ के पार्थिव-वपु का परिशीलन करने पर, इसी निष्कर्ष का निष्क्रमण होता है कि आप श्री के स्नेहाद्राङ्ग का आलिंगन-स्पर्श, दासी के अन्तःकरण-मरुस्थल को उसी प्रकार आर्द्र बना देने में सक्षम हैं, जैसे गम्भीर-गहरे जल से भरा हुआ सरोवर अपने निकटतम-प्रान्त भूमि को। अस्तु, भाग्य-भाजन एवं अप्रतिम-प्रेम की प्रतिमा, हमारे प्रियतम को ही एकमात्र यह श्रेय संप्राप्त है, जिससे दासी के हृदय में भी रामानुरक्ति-सुधा के सिन्धु-सीकरांश का दर्शन जब-तब सुलभ होकर शीतलता का समनुभव कराता रहता है।

श्री लक्ष्मीनिधिजी : महाभागे ! आपके वाक्यों की व्यवहृति, विशुद्धाचरण संश्लिष्ट सत्पत्नी के औचित्यार्थ की प्रकाशिका एवं सत्पति के स्वाभाविक सुख-सन्तोष की सम्प्रवर्धिका है। अखिल-मण्डल के महिपालों से वन्दनीय पादपीठ श्रीमन् महाराज चक्रवर्ती दशरथजी की सेवा में उनके वासस्थान पहुँचना, मुझे श्रीमान् पूज्य पिताजी की आज्ञानुसार अत्यन्तावश्यक है, इसलिए अब आपकी अनुमति हो तो आर्य-जनों के प्रसन्नतार्थ तत्-कैंकर्य सम्बन्धी सामयिक कार्यों का सम्पादन करूँ।

श्री सिद्धिजी : हृदयेश्वर की अनुज्ञा ही दासी के लिए, ओम और अथ के समान सम्पूर्ण मंगलों और मोदों की जननी है। नाथ की प्रवृत्ति का अनुगमन करना, मेरे मति की सहज सम्प्रवृत्ति है। हमारे निमिकुल नर्षभ को अपनी कुशल-कार्य-दक्षता का पूर्ण परिचय समर्पित करते हुए, वर्तमान-व्यावहारिक परिस्थितियों में पटुता पूर्ण सहायता अपने पिताजी को संप्रदान करनी चाहिए। अस्तु, अवश्यमेव आप जनवासा के लिए प्रस्थान करें। जीवन-धन का मंगल हो, मंगल हो।

[कुँअर श्री लक्ष्मीनिधिजी प्रस्थान करते हैं।]

पटाक्षेप

....

त्रिंशः दृश्यः ३०

[वैवाहिक-क्रिया पूर्ति के लिये दिव्य-दूलह-वेशधारी-रथारूढ़ रघुनन्दन राम के साथ विविध प्रकार की वाद्य-ध्वनियों से पृथ्वी और आकाश को ध्वनित करती हुई बारात, श्री चक्रवर्ती जी महराज की अध्यक्षता में निमिकुल-नरेन्द्र के दरवाजे पर पहुँच गई है। पुत्र-वधू के साथ जनक-पाट-महिषी श्री सुनैनाजी सम्पूर्ण राज-रानियों एवं सखी-सहेली-सहचरियों को लिये हुये, जमाई की परिछन-आरती कर रही हैं। मांगलिक-पंच शब्दों तथा अग्नि-क्रीडनक के साथ-साथ और अनेक सामयिक केलि-कला का प्रदर्शन हो रहा है। समय की शोभनीय सुषमा का सुख वर्णनातीत है, आनुभवीय आनन्द की राशि-राशि चमत्कृत हो रही है।]

श्री सिद्धिजी : सहेली ! देखो तो सही.....श्री निमिकुल–नन्दनजू अपने कर कमलों से श्री रघुकुल–नन्दन रामभद्रजू के पाणि–पङ्कजों को पकड़कर कैसे रथ से उतार रहे हैं। अहा...अपने उत्सङ्ग का आश्रय देकर प्राण–प्रिय वैदेही –वल्लभ को, मेरे प्रियतमजू अपना परम प्यार प्रदान करते हुये, धीरे से भूमि पर कैसे स्थित कर रहे हैं, इस अलौकिक आलोक युक्त आभा का अद्वितीय अवतरण अपनी आत्मा को ही क्या, पृथ्वी और व्योम में विराजित सम्पूर्ण–नर–नारियों को अपनी ओर आकर्षित करता हुआ, आनन्दाम्भोधि में निमग्न कर रहा है। अहो ! श्याल–भाम की भव्य भेंट, सुरगणों एवं सुर–ललनाओं को पंचध्वनि के साथ, सुरतरु के सुरभित–सुमनों की विपुल वर्षा करने के लिये, प्रसन्नता पूर्ण प्रोत्साहित कर दिया है। आनन्द ! आनन्द !! आनन्द !!!

चित्राजी : हे मधुर प्रिये ! युगल सौन्दर्य–सागरों के सम्प्रयोग ने समस्त सुर–वृन्दों तथा वृन्दारिका–गुणों के चंचल–चित्त का निरोधकर अपने आकर्षण से अप्रयास और अविलम्ब सबको मन–मुग्ध कर दिया है। तभी तो गगनगामी–विमाना–वलियों के द्वारा आच्छादित आकाश से पुष्प–वृष्टि का बाहुल्य एवं जय–घोष, नगाड़ों के तुमुल–नाद के साथ अन्तस्थलीय–सुख–सिन्धु को समुन्नतशील बना रहा है। धन्य है, युंगल–नरपति–नन्दनों की मोहिनी मिलनि को।

श्री सिद्धिजी : अरी चित्रे ! देखो तो सही, श्याम–गौर वपु वाले युगल नर–पति कुमार परस्पर आलिङ्गनास्वाद के सुअनुभव में अतिशयासक्त स्मृति–शून्य से हो रहे हैं। रस–स्वरूप दोनों रसिकवर अपने रसानुभूति–जनित ज्योतिर्मय आनन्द से प्रोदीप्त होकर अद्वैत–पथ का अनुसरण कर रहे हैं। अहा ह.... ! इनके प्रेमाद्वैत के प्रेमालोक से आकाश के नीचे निवास करने वाले सभी प्राणि–समुदाय प्रकाशित हो रहे हैं। आली ! शत्रुञ्जय नामक गजराज पर चढ़े हुये, श्रीमान चक्रवर्ती महाराज की मुख–मुद्रा का दर्शन तो करो। अहा... उनका प्रेमाश्रु से विभूषित मुखाम्भोज उनके प्रेम–प्रकाश का ही द्योतक है, जो प्रेम–मूर्ति युगल–कुमारों के सम्मिलन से संप्रभावित है।

चित्राजी : हे नृपति–नन्दिनीजू ! प्रेम–स्वरूप प्राणि–समूहों के प्रियतम भाम–श्याल का प्रेम–समुद्र उमड़कर संप्रवेगतया सर्व स्थावर–जंगम जगत को स्वयं में सम्प्रवेशित उसी प्रकार कर रहा है, जैसे रत्नाकर और महोदधि नामक दो समुद्रों का संगम अपनी उत्ताल तरंगों से समग्र बेला को आत्मसात करता हुआ प्रतीत होता है। अहो....हमारे दर्शानाकाँक्षी नेत्र निर्निमेष होकर स्वयं के पुटों से इस सौन्दर्य–सागर को पीते हुये भी अतृप्ति का अनुभव कर रहे हैं। आश्चर्य ! आश्चर्य !! कितना भी इस सौन्दर्य–सुधा का पेय पिया जाय किन्तु पेट विवर्धित न होकर पृष्ठ से चिपकता जा रहा है।

श्री सिद्धिजी : सहेली ! श्याम–सुन्दर श्री जानकी वल्लभलाल जू को उनके परम प्यारे सुहृद श्री श्यालजी ने उठाकर परिछन करने योग्य रत्न–पालकी में विराज दिया है। अहो ! अवनी पति कुमार ने अपनी अनन्तानङ्ग–मद–मर्दिनी सुषुमा से ज्ञानियों के निरपेक्ष चित्त को अपनी ओर आकर्षित करके, उसे स्वरूपापेक्ष बना दिया है, अस्तु, ज्ञान–पुरी के गढ़ पर विजय प्राप्त कर लेना, उनके लिये सहज हो गया है। आश्चर्य तो यह है कि पराभव को प्राप्त पुरी ही इनके जीत की पताका फहराती हुई, डंके की चोट के साथ विजय उद्घोषित कर रही है।

चित्राजी : हे मधुर भाषिणि ! माधुर्य–महोदधि मन–मोहन राम का साम्प्रत–सौन्दर्य–सिन्धु तो दिव्य–दूलह वेश स्वरूप राका–शशि के संयोग से क्षण–क्षण संप्रवर्धित हो रहा है, जिसमें सौकुमार्य का दूसरा सागर सम्मिलित होकर समस्त प्राणियों के प्रलय का कारण बन रहा है। आश्चर्य ! आश्चर्य !! महा आश्चर्य !!! जिस दिशा में दृष्टि–निक्षेप करती हूँ, उस ओर जड़–चेतनात्मक–जगत को उक्त महार्णव में निमग्न पाती हूँ। हाय ! हाय ! मेरी दशा क्या हो रही है, मैं स्वयं को खोकर कुछ समझ नहीं रही हूँ। अहो ! निर्निमेष–नेत्र अपने प्रणयावलोकन एवं स्नेह–नीर के द्वारा इस प्रलयकारी समुद्र की पूजा करने से उपराम नहीं ले रहे हैं।

श्री सिद्धिजी : चित्रे ! धैर्य धारण करो, अधीरता का अवलम्बन लेकर साम्प्रतीय सुख–सम्प्राप्ति से वञ्चित न रहो, साकल्यतया सुख–सुषमा–श्रृंगार की मन–मोहिनी–मूर्ति का समनुभव करो। सुनो न... ! सम्पूर्ण राज–परिवार की राज–रानियाँ मंगल गीत गा रही हैं, हमको भी उनके स्वर में स्वर मिलाकर मांगलिक गीत–गान से वाणी को पवित्र बनाना चाहिए।

चित्राजी : हे शुभाङ्गी जू ! आप पुण्य–गुण पुष्कला हैं। समयोचित–चेष्टाओं से स्व–पर के चित्त को प्रसन्नता से पूर्ण किये बिना न रहना, आपका सौम्यता से संयुक्त सहज स्वभाव है। आप श्री की हितकारिणी शिक्षा का प्रभाव किंकरी के अन्तःकरण को पहले से ही प्रभावित कर रखा है। विस्मृति की दशा में अपनी सहचरी को अनिर्वचनीय–सुख से वंचित न देखना, आप जैसी स्वामिनी के स्वरूपानुरूप है। अस्तु, दासी के उर में वही उमंग है, जो आप श्री के हृदय में है। श्री राजकिशोरीजू के ब्याह की लग्न में सर्वभावेन हम लोगों का संलग्न रहना ही परमानन्द प्रदान करने वाली स्वरूपानुरूप परिचर्या है। अस्तु, इस सुअवसर के क्षणांश से भी वंचित न रहना, हमारे चरम और चिर–सुख का द्योतक है।

श्री सिद्धिजी : एक मन एक इच्छा का होना ही साहचर्य–धर्म का सही स्वरूप है, अस्तु, तुम से तद्धर्म का दर्शन स्वाभाविक है, चित्रे !

[श्री सिद्धिजी चित्रा के साथ मंगल–गीत गाकर अपनी स्वर–लहरी से दोनों दलों के चित्त को आकृष्ट करती हुई, संगीत–सुधा का पान करा कर सबका आतिथ्य सत्कार कर रही हैं।]

पद : चन्दन चर्चित श्याम वपुष वर, दूलह वेष बने अभिरामा।
राम रसिक सौन्दर्य सुधा–निधि, सौकुमार्य सौष्ठव सुख धामा ।।
चन्द्रकीर्ति अमृतमय विग्रह, है माधुर्य महोदधि नामा ।
मस्तक मणिमय मौर विराजित, सेहरा लर लहरात ललामा ।।
स्वर्ण सूत्रमय जरकसि जामा, धोति पीत बिअहुती सोहैं ।
नख–शिख वसन विभूषण भूषित, चितवनि मुसकनि मन को मोहै ।।
कोटि–कोटि कन्दर्प दर्प दलि, त्रिभुवन चित चोराय के जोहै ।
हर्षण पंच शब्द सुनि श्रवणन, आनँद आनँद आनँद दोहै ।।

चित्राजी : हे चन्द्रानने ! श्री अम्बाजी का अतीतानन्द उन्हीं के अन्तः करणीय अनुभव का विषय है, अस्तु, हजारों कल्पों तक, हजारों शेष और शारदा समुत्सुकता के साथ अविराम वर्णन करते रहें, तो भी उसके परिसमाप्ति की कौन कहे, किञ्चित अंश का भी यथार्थ कथन नहीं कर सकते। अहा हा... ! अपने जमाई के वर–वेष को देखकर

स्व-नाम धन्य आपकी सासु सुनैना अपने नाम की यथार्थता, आज सबके सम्मुख प्रकट कर रही हैं, वास्तव में सुन्दर नेत्र तो वही हैं जो श्रीराम के मुखाम्भोज के मधुकर बन कर मकरन्द का पान करके मँडराते हुए अतृप्ति की अनुभूति करते हैं।

श्री सिद्धिजी : निःसन्देह हमारी परम पूज्या सरल-हृदया सासुजी का नितान्त निर्मल स्नेह ही तो साकार होकर त्रिभुवन को उज्जवल-आलोक प्रदान कर रहा है, चित्रे ! क्या पृथ्वी, क्या अन्तरिक्ष और आकाश, सभी स्थानों को नयनाभिराम राजिव लोचन रसिक शिरोमणि राम ने अपने अनुपमेय शत-शशि-विजित वरानन से सुधा की सरिता सम्प्रवाहित करके अपरिमित-आनन्द के अनुभव में विभोर बना दिया है। वे केवल विभोर बनाकर मौन रह गये क्या ? नहीं , नहीं...क्रान्ति उपस्थित कर दिये हैं और अपनी कहरकारी क्रिया से अद्‌भुत रोमाञ्च, कसक और सिहरन समुत्पन्न करके, त्रिभुवन की गली-गली में धूम मचा दिये हैं।

चित्राजी : हे शुभ दर्शिनीजू ! छिद्रान्तर प्रेक्षी आलोचक, आसुरी भाव से भावित नास्तिक तथा श्रुत-दृष्टार्थ-वितृष्ण-वीतराग, केवली भूत सिद्ध योगी और ब्रह्मानन्द निमग्न ब्रह्मविद-वरिष्ठ विज्ञानीजन भी इनके अलौकिक-आनन्दमय विग्रह का दर्शन करते ही, अपनी-अपनी स्थितियों को छोड़कर रूप रसिक बन गये हैं, तभी तो पृथ्वी और आकाश एक हो रहे हैं। पंच-शब्दों से प्रपूरित कोलाहल, पुष्प तथा पुष्पमाल की बहुल वर्षा और दुंदुभि घोष के साथ इत्र-अरगजा-चन्दन-केशर-कुंकुम की वृष्टि नभ से अविराम होती हुई, भूमि को आच्छादित कर रही हैं। अहा ! दशों दिशाओं में आनन्द ! आनन्द !!

श्री सिद्धिजी : भाम की भव्य अलङ्कारों से अलंकृत आजानु बाहू का स्प्रहणीय-स्पर्श करते हुए श्याम सुन्दर के श्याल, गयन्द-गामी चाल से कैसे उन्हें ब्याह-मण्डप में ले जा रहे हैं। अहा.... ! यह श्याम-गौर तेज से तेजस्विनी एवं परम प्रदीप्त युगल किशोर की मन-मोहिनी जोड़ी मेरे मन-मन्दिर में सदा के लिए बस गई है, चित्रे ! इनके पद न्यास के साथ मैथिल-सीमन्तिनियों के समवेत मंगल-गीत की सुधा तो श्रवणवन्तों के हृदय को संप्रहृष्टता प्रदान कर स्मृति-हीन बना रही है। हम लोग भी इस माँगलिक-गीत की आवृत्ति करके अपने ननँद-ननदोई का मंगलानुशासन करें।

[चित्राजी व सिद्धिजी साथ-साथ पद गाती हैं।]

पद : मधुकर मधु को पियन पधारो।
रस-सर विकसित कमल-कली ढिंग रस-रस रसिक उदारो ।।
अस मकरन्द सुदुर्लभ अन्यत, अपनी भाग विचारो ।
रसे रहेहु अहर्निशि मेंड़रावत, करि गुंजन सुख सारो ।।
हर्षण प्रेम विवर्धन होई, पियत पराग पियारो ।

श्री सिद्धिजी : आली ! सुनैनानन्द-वर्धनजू, कौशल्यानन्द वर्धनजू को मंडप के मध्य विनिर्मित, रत्न-वेदिका के ऊपर भासमान भव्य-ब्याहासन पर विराजकर, वर्तमान समय स्वयं एक हाथ से छत्र और एक हाथ से चमर लेकर मेरे ननदोई की सेवा में संलग्न हो गये हैं। अहो ! इस समय वे इस प्रकार शोभायमान हो रहे हैं जैसे महा- वैकुण्ठ में महा-मण्डप के मध्य रत्न-सिंहासनासीन महा-विष्णु के कैंकर्य में निमग्न श्री विश्वक्सेनजी !

चित्राजी : हे वरानने ! वेद–विधि का निर्वाह भली–भाँति करके आपके श्वसुर देव, वर–पूजन कर रहे हैं, श्री सुनैना अम्बा उनके बाम भाग में विराज रही हैं श्री वशिष्ठ–शतानन्दादि उपरोहितों से अनुशासित सोहागिनियाँ श्री किशोरी जू को मंडप में लिये आ रही हैं। अहा... ! नख–शिख से श्रृँगारित सुख–सुषमा श्रृँगार–विग्रहा विदेह–राजनन्दिनीजू अपने अनन्तानन्त अलौकिक सौंदर्य–सौकुमार्य और माधुर्यादि–दैहिक–सम्पत्तियों से समाज को सम्प्रकाशित करती हुई, अपनी छवि को छहरा रही हैं। देखें न..., इनके प्रभाव से प्रभावित होकर विवाह–मंडप में आसनासीन सभी सुर–नर–मुनियों का मन और मस्तक लली जू के चरणों की ओर झुक गया है। आकाश से पुष्प वर्षा हो रही है।नगाड़े बज रहे हैं, मंडप में भी विविध वाद्यों की झन्कार झंकरित हो रही है। कोकिल–बयनी सीमिन्तनियों के मुख से गाया हुआ मंगल–गीत मुनियों के मन को भी आकर्षित करने में सक्षम हो रहा है। विप्रों तथा बन्दीगणों से उच्चोच्चरित वेद और विरुदावली की ध्वनि कर्ण–रन्ध्रों से प्रवेश करके, हृदय को प्रतिध्वनित करती हुई हर्ष वार्धक्य–बनिता की सहायिका सहचरी बन रही है। जयघोष का तुमुलनाद तो व्योम और वसुन्धरा की पृथकता को दूर करने के प्रयास में संलग्न हैं और अबाधितरूप से युगपद दोनों ओर से निनादित होकर उर्ध्व और अधः दिशाओं को व्याप्त कर रहा है। अहा ! आनन्द का अपार अम्भोधि ब्रह्माण्ड के विधायक ब्रह्मा, विष्णु, महेश के समेत सभी सुर–नर–मुनि समुदाय को अपने में आत्मसात कर रहा है। आपके भाग्योत्कर्ष को कहना ही क्या है जिसे संवीक्षण करके शारदा–रमोंमा भी ललचीले नेत्रों से अभिलाषा करती होंगी कि कभी हमको श्रीधर कुमारी की तरह नव–दम्पति श्री सीतारामजी के कैंकर्य करने का सौभाग्य संप्राप्त होगा।

श्री सिद्धिजी : अहा हा... ! संसार के सर्व सुखों का संकलन करके तद्नुभूति की इस चमत्कार पूर्ण वैवाहिक परमानन्द–सिन्धु–सीकराँश के साथ, समता का अनुसंधान करना आंशिक औचित्य से सर्वथा हीन रहेगा देखो न चित्रे ! हमारे सास–श्वसुर श्री लाड़िली किशोरी जू को अपने आगे आसन देकर कुशाक्षत जल केसाथ उनकेपाणि–पंकज को अपने कर–कमलों में ग्रहण करके श्री राम जी को समर्पण कर रहे हैं। कैसी समीचीन शोभा का नितान्ति निखार हो रहा है, जैसे पर्वतेश श्री हिमाचलजी अपनी अर्धाङ्गिनी श्री मैनाजी के साथ स्व–पुत्री पार्वती जी को श्रीमान् शंकर जी के हाथ समर्पित कर रहे हों अथवा सपत्नीक सिन्धुदेव अपनी आत्मजा इंदिरा जी को श्री विष्णु भगवान के कराब्जों में अर्पण कर रहे हों। अहा.... ! मेरा मंजु–मनोरथ सफल हो गया, श्री श्याम सुन्दर रघुनन्दन राम ने मेरी लाड़िली ननँद का पाणि–ग्रहण करके सम्मान के साथ अपने आसन में उन्हें आसन दे दिया है। युगल किशोर–किशोरी की जय हो ! जय हो !! सदा जय हो !!!

चित्राजी : भद्रे ! आपके सास–श्वसुर, वर–कन्या का पाद–प्रक्षालन कर रहे हैं। अहा... ! इस अपूर्वभूत–भाग्य ने आज श्री मिथिलेशजी महाराज को वरण किया है, तभी तो आकाश से निशानों की चोट तथा सुन्दर सुरभित–सुपुष्पों की वृष्टि के साथ, देवताओं के द्वारा "जय श्री निमिकुल नरेश" के नारे लगाये जा रहे हैं।

(दोनों परस्पर मधुर वार्तालाप में निमग्न हैं, इतने में दासी का प्रवेश...)

दासी : (करबद्ध शिर झुकाकर) स्वामिनीजू के जीवन की जय हो, जय हो!

श्री सिद्धिजी : कहो दासी क्या कहना चाहती हो ? अतिशयानन्द का अनुभव साकल्य-रूपेण कर रही हो न ?

दासी : आर्यनन्दिनीजू की होकर आनन्दानुभव की अर्हता, दासी को संप्राप्त हो जाना, कोई आश्चर्य का विषय नहीं, यहाँ तो उत्तम श्लोक, आर्य लक्षणाश्रय, पुरुषोत्तम चक्रवर्ती-कुमार का आनन्द-सिन्धु, सबको सहज ही अपने में निमग्न कर रहा है। हाँ, नम्र निवेदन यह है कि वर-कन्या का पाद-प्रक्षालन करके श्री विदेह राजजी महाराज अवकाश पा गये हैं। अब आपके प्राणबल्लभ, स्वप्रिय पाद-पद्मों का पखारने के लिये आपकी प्रतीक्षा में आसनासीन हैं, अस्तु, पुरोहितों की आज्ञा का अनुसरण करती हुई, आप शीघ्रातिशीघ्र ब्याह-वेदिका के समीप प्रयाण करें।

श्री सिद्धिजी : अरी दासी ! परम प्राप्तव्य शुभ समय की प्रतीक्षण-प्रक्रिया कब से मुझे त्वरान्वित करती हुई, अत्यन्त आतुर बना रही है। लो, मैं अभी और इसी क्षण चली।

[दासियों और सखियों से समावृत सिद्धि कुँअरि जी पति के पास पहुँचकर अनुपमेय वर-कन्या का पाद-प्रक्षालन करने लगीं। पंच-शब्दों के साथ भूमि और आकाश में आनन्द की लहरें उठकर, अपने ही आप कल्लोल करने लगीं। नेपथ्य से गीत के मधुर-स्वर हृदय को अधिक आंदोलित करने लगे।]

पद : अजब आली दुलहा-दुलहिन की जोरी।
नख-शिख ते सर्वाङ्ग सुभग तन, सुख सुषुमा श्रृंगार न थोरी ।
घन-दामिनि द्युति देह ते निकसति, नभ-वितान विच श्यामल गोरी ।
रसिक-शालि-हित रस कहँ वर्षति, नृत्यहिं मन-बुधि मोर औ मोरी ।
लक्ष्मीनिधि-सिद्धि पाँव पखारत, उलहति उपमा रसहिं में बोरी ।
जनु रति-काम रमेशहि पूजत, रमा सहित भल भाव विभोरी ।
सुर-गण समुद प्रशंसि प्रशंसी, झरहिं प्रसून करत जय शोरी ।
हर्षण सो सुख शेष न कहि सक, दम्पति युगल चित्त को चोरी ।

[श्री सिद्धिजी पतिदेव के साथ, अपने ननँद-ननदोई का पाद-प्रक्षालन सर्वात्म-समर्पणतया करके पुनः सखी-सहेलियों से समाकीर्ण अपनी अट्टालिका में आसनारूढ़ हो जाती हैं।]

चित्राजी : आर्य वल्लभे ! क्या ही आनन्द का अनोखा और अलौकिक सुअवसर सबको सर्वभावेन संप्राप्त हो रहा है, जिसका अनुभव कर-करके मेरी आत्मा अपार संवित्-सुख-सिन्धु में संलीन हो रही है। अहा हा.. वर्तमान-समय में वर-कन्या, कनक-खम्भ के सहित अग्निदेव की परिक्रमा करते हुये कैसी शोभा से सम्पन्न हो रहे हैं, देखिये न...लगता है, कि छवि और श्रृंगार साकार रूप में समुत्पन्न होकर मंडप में विराज रहे हों।

श्री सिद्धिजी : आली ! पंच-ध्वनियों के साथ भाँवरी देते हुये मेरे ननँद ननदोई की परिछाँही मणि-खम्भों में पड़ने से ऐसा लग रहा है, कि जाने कोई कार्य-स्वरूप श्री सीताराम लुक-छिपकर अपने कारण भूत श्री सीताराम-विवाहोत्सव का अवलोकन कर रहे हों। अहा.... ! मेरे प्राणनाथ भी अपने बहन-बहनोई के कर-कमलों में लाजा समर्पण

करते हुये, सच्चिद-सुख-सिन्धु में समा रहे हैं उन्हें अपनी भी स्मृति नहीं रह गई है। निम्न-नयना विदेह कुमारी को तो लज्जा और संकोच ने अपने आधीन कर ही लिया है। किन्तु चक्रवर्ती कुमार की भी संकुचित और विलज्जित मुद्रा उनके मुख-मयंक के विकास में कम बाधा नहीं पहुँचा रही है फिर भी नव-वर-वधू की मन-मोहिनी, शोभा-सुधा-माधुरी जन-जन के चित्त को चुराने वाले चित-चोर की चौर्य-कला-पटुता की दूतिका सिद्ध हो रही है।

चित्राजी : सुमुखि ! सुनिये तो सही, इन अपरिचित-चन्द्रमुखी-ललनाओं के मुख से विनिस्सृत भाव भरा मधुर संगीत कैसी श्रवण-प्रियता को प्रदान कर रहा है। मालुम होता है कि ये ब्रह्मा-विष्णु-महेश की साक्षात शक्तियाँ हैं क्योंकि इनकी सभी चेष्टायें दिव्य और अलौकिक हैं। श्री रामजी को श्री किशोरीजू के शिर में सिंदूर-समर्पण करते देखकर ये सब प्रेम-विभोर हो रही हैं। धन्य है इनके धवल-नवल-नयनानुराग को। लगता है कि इनके नेत्र-मधुप श्री रामजी के मुखाम्भोज-मकरन्द का अनवरत पान करते हुये भी, अतृप्ति का अनुभव कर रहे हैं।

श्री सिद्धिजी : चित्रे ! श्याम सुन्दर का आश्रित-विरोध-निवर्तक सौन्दर्य एवं जन-मन-रंजन महार्ध माधुर्य, सौकुमार्य तथा सौष्ठव के संपुट में सुरक्षित होने से, किसके चित्त को अपनी ओर आकर्षित करने में समर्थ नहीं हो रहा है। सारा का सारा यह स्थावर-जंगम जगत, जानकी-जीवन की मंद-मुसकान से व्यामोहित हुये बिना नहीं रहा। जब विधि-हरि-हर ही राघव के पुंसा-मोहन स्वरूप को देखकर मोहित हो गये, तो उनकी अर्धाङ्गिनियों के विषय में क्या कहना है क्योंकि नारियों का नैसर्गिक-मन अपने सहज स्वभाव से रूप-रस का रसिक होता है। अहा..! सम्पूर्ण सुर-नर-मुनि समुदाय एक स्वर से श्री सीतारामजी की विवाह-प्रक्रिया-पूर्ति की घोषणा करते हुये मंगलानुशासन कर रहे हैं। अतएव आली, अब हमें अपने ननँद-ननदोई को कोहवर-कक्ष में ले चलना समुचित होगा। चल करके वहाँ की आनन्दमयी परमैकान्तिक-लीलाओं का आस्वाद नव-वर-वधू की सकाशता से संग्रहण कर आत्मा के यथार्थ प्रयोजन को प्राप्त करना चाहिये।

चित्राजी : हे विलासिनि ! आपका मनोरथ साकारता को प्राप्तकर स्वयं श्री के सम्मुख समुपस्थित है। अतएव आप उसकी संप्राप्ति से समीचीन सम्भोग के अनुभव जनित अतीतानन्द का आस्वाद स्वतंत्रता पूर्ण ग्रहण करें। अहा ! दिव्य-मंगल-विग्रह के आलोक से आलोकित होकर कोहवर-भवन ही नहीं, समग्र सारी-सरहजें तथा सखी-सहेलियाँ अपनी-अपनी दासियों के समेत मंगलमय बन जायगीं। निज की प्रतीति है कि हास्य-रस की सरिता सम्प्रवाहित होकर, अपने आनंदाम्बु में सबको निमग्न कर देगी। अस्तु, समय का स्वागत समय से करना समुचित है। शीघ्रता के साथ चलें। देखिये मंडप में अब आपकी ही प्रतीक्षा हो रही है। श्री शतानन्दजी महाराज कोहवर-कुंज में जाने की आज्ञा वर-कन्या को प्रदान कर चुके हैं।

[कहकर चित्राजी, श्री सिद्धिजी को व्याह-वेदिका के समीप ले जाती हैं। तत्पश्चात् श्री सिद्धिजी अपनी सहचरियों के साथ मंगल गान करती हुई श्री सीता रामजी महाराज को कोहवर-गृह लिये जा रही हैं। पुष्पाच्छादित मखमल के कामदार पाँवडे कोहवर-कक्ष तक बिछे हुये हैं। पंच-ध्वनि हो रही है।]

पटाक्षेप

[कोहवर-कक्ष में सिंहासनासीन नव-दम्पति की दिव्यातिदिव्य झाँकी का दर्शन करके, श्री सिद्धि कुँअरि जी स्वकीय समाज सहित परमानन्द का अनुभव कर रही हैं। रस-वस अनेक-अनेक लीलाओं की योजना के द्वारा हास-विलास की मधुरिमा को समुन्नत करती हुई, उन्होंने उक्त कुंज को रसमय बनाकर रसिक राय रघुनन्दन रामभद्रजू को रसाभिषिक्त कर दिया और स्वयं राम-रस की रसिकिनी बनकर ननँद-ननदोई के कैंकर्य में संलग्न हो गईं।]

श्री सिद्धिजी : (स्पर्श करती हुई) हे कोहवर-कुंज बिहारी जू! सामने सम्प्रकाशित स्नेह से स्निग्ध दोनों बातियों को कृपाकर आप एक कर दें, दोनों ज्योतियाँ, पति-पत्नी की आत्मा की प्रतीक हैं। दो से एक बन जाने में ही रस की उपलब्धि और प्रेय से श्रेय की ओर जाने की आवश्यकीय-यात्रा सुकरता पूर्ण संभव हो सकेगी।

श्रीरामजी : हे कुँअर-वल्लभे ! रसिक-भ्रमर, पंकज-पराग की प्रेमातुरता से स्वयं कमल-कोष से कदापि पृथक होने का चिन्तन नहीं करता, अनन्त काल से मिले हुये को क्या मिलाना, फिर भी आपके अनुशासन का भंग होना मुझे प्रिय नहीं किन्तु आपको ज्योति-सम्मेलन करने का नेग भी तो देना चाहिये, कि बात ही बात में मुझ से सब कार्य करा लेना चाहती हैं।

श्री सिद्धिजी : मेरे मन-मोहन ! सुनें तो सही...श्री की "श्री" अपनी ननँद को देकर हमने आपको क्या नहीं दिया ? साँगिता में स्वयं पतिदेव सहित मैं भी समर्पित हो चुकी हूँ। अब जो शेष हो, उसे आप कहें, मैं देने को तैयार हूँ।

चित्राजी : (विनोद में) मालुम पड़ता है, दूल्हे की दाई ने दूल्हे को याचना कला के विद्यालय का स्नातक बनाकर भेजा है, तभी तो ये नेग लेने के लिये खूब मचल रहे हैं, ठीक भी है, लोभियों को अपने लोभ का संवरण करना असाधारण है। यहाँ तो हमारे विदेहराज जी महाराज का दरबार अत्यन्त उदार है, आप श्री को जितनी और जिस वस्तु की कामना होगी उससे कहीं कई गुना अधिक वह वस्तु सेवा में समर्पण की जायगी। जानते हैं न, आपके प्रिय श्यालजी का नाम श्री लक्ष्मीनिधिजी है तथा श्री सरहज जू का नाम सिद्धि कुँअरि है।

[कहकर चित्राजी ढेर के ढेर हीरे, जवाहिरात, मणि-माणिक और वसन-विभूषण लाकर सामने सादर, सनम्र समुपस्थित करती हैं और बिना अहं के सिद्धिजी विनय के साथ स्वीकार करने के लिये श्रीरामजी से निवेदन करती हैं।]

श्रीरामजी : हे श्यामे ! मुझे केवल न तो आप चाहिये न आपका धन, आपके ननदोई को चाहिये, अपनी सरहज का पूर्ण प्यार, जो रस से ओत-प्रोत आत्मा के अनुरूप हो। अहा, कब से मेरे कर्ण आपकी रस भरी वार्ता को श्रवण करने के लिये आतुर हो रहे हैं। वैष्णवी-माया के समान आपके अत्यन्त आकर्षक-गुणों का अनुभव करने के लिये, मेरी आत्मा में अत्यधिक आकांक्षा उत्पन्न होकर पूर्ण मनोरथा होने का सुअवसर अन्वेषण कर रही है।

श्री सिद्धिजी : हे विश्व-विलोचन चोर ! आपके अङ्ग-प्रत्यङ्ग किसी भी नयनवन्त के नयनों का विषय बनते ही उसे अपनी ओर आकर्षित किये बिना नहीं रहते, वह आपके रूप का रागी एवं रसिक बन जाता है, प्रेम की प्रमाणता में सर्वात्म-समर्पण कर देता है, किं पुनः जिसे आप अपनाकर स्वयं उसके अनुभव करने के लिये प्रयत्नशील हों। मेरे प्राणों के प्यारे ! आप ज्योतिर्मय-युगल बत्तियों को मिला दें, आपकी सहज सेविका सरहज अनन्य प्रयोजन होकर कबसे आप श्री पर बलिहार है।

श्रीरामजी : लीजिये, मैंने दोनों प्रदीप्त-बत्तियों को एक करके नेग में अपनी श्याल-वधू के रस से ओत-प्रोत परम प्यार को प्राप्त कर लिया, जो सर्व प्रकारेण सुखावह और आनन्द के सिन्धु को भी आनन्द प्रदान करने वाला सर्वभावेन सिद्ध होगा।

श्री सिद्धिजी : हे हृदय-हरणजू ! कमलिनी के मकरन्द का प्रेमी लुब्ध-मुग्ध-मधुप जब स्वयं रस की अनुभूति करने के लिये गुंजार करता हुआ, उसके ऊपर मँडराता है, तब वह नलिनी रसिक को अपने से अपने समीप आया हुआ जानकर कृत कृत्य ही नहीं, परम प्रसन्नता को प्राप्त हो जाती है, क्योंकि स्वगत-स्वीकार से परगत स्वीकार सर्वथा श्रेष्ठ है।

श्रीरामजी : (विनोद में मुस्कुराकर) बेचारा मधु-जीवी-मधुप क्या करे ? उसका चंचल-चित्त, मन-मोहक मधुर-मधुर मकरन्द का पान करके ही अचंचल होकर चारुतया परम विश्रान्ति को प्राप्त होता है। अतएव उसे कमलिनी के समीप बिना आमंत्रण के स्वयं पहुँचने में कोई संकोच और पराभव का अनुभव नहीं होता, हृदयानन्द वर्धिनीजू।

चित्राजी : हे चक्रवर्ती नन्दनजू ! मिथिला के वृहद-सरोवर में विकसित सुन्दर-सौरभ-सम्पन्न सुरभित कमलिनियों का समूह-समाज, चंचल-चंचरीक के चित्त को चारुतया चंचलता से वियुक्त करने की प्रतीक्षा कर रहा है, वह श्याम-भृंग की रसिकाई से रीझा हुआ, अपने में रमाकर उसे अपने पराग का पान कराने के लिए समुत्सुक है। अच्छा अब लाल साहब ! लहकौर, श्री लाड़िलीजू के साथ पायें, पक्वान्न पूर्ण थाल सम्मुख आ गया है, यदि श्रीमान् कोहवर-कला से अनभिज्ञ हों, तो मैं जो कहती हूँ, उसे श्रवण करें। प्राथमिकता वर की होती है, अस्तु, आनन्द पूर्वक प्रथम हमारी श्री किशोरीजू को पवाकर पीछे आप श्री को पाना होगा, तत्पश्चात् श्री किशोरीजू को भी आपका अनुवर्तन अस्वीकार करना उचित न होगा, इस प्रक्रिया में आपका कोई पराभव नहीं अपितु लोकाचार का समुचित सम्पादन है। आप अपने आत्म-विश्वास, कला-कौशल और संघटन शक्ति से समग्र समन्वित होकर, दूषण को भी भूषण में परिवर्तित कर देने की क्षमता रखते हैं।

श्रीरामजी : (संकुचित होकर सलज्ज) युवराज्ञी की आज्ञा न मानने में आपत्ति का अदर्शन न होगा, अस्तु, जो-जो चाहेंगी सो-सो मुझे परवशता के कारण करना ही पड़ेगा।

(श्री किशोरीजू के मुख में ग्रास-स्पर्श कराने की क्रिया करते हैं।)

चित्राजी : चक्रवर्ती-कुमार ! अब आप इस अमृतान्न का सेवन का सर्व सामर्थ्य-प्रदा सिद्धि को प्राप्त कर अमरता का अनुभव करेंगे।

अन्य सखियाँ : अवश्य, अवश्य ! अयोनिजा के प्रसाद से ही आपका रामत्व, रसमय एवं अमर रहेगा, दूल्हाजी ! क्योंकि रमणी के वरानन में ही अपने वरण किये हुये वर को अमृतत्व प्रदान करने वाला अमृत का अक्षय कोष सन्निहित रहता है।

[कहकर सभी सखियाँ हँसने लगती हैं। फिर सखियों के बार-बार कहने पर श्री किशोरीजू लज्जा और संकोच से श्री रामजी के मुख की ओर ग्रास ले जाकर थाल में रख देती हैं। श्री किशोरीजी की इस कृति पर सखियाँ पुनः हँसने लगती हैं।]

चित्राजी : (विनोद) अरी सहेलियों क्यों हँस रही हो ? श्री राजकिशोरीजू ने ठीक ही किया है, कहीं काले मुख में दिया हुआ कवल हमारी कनकोज्वला किशोरीजू को काला कर दे तो ? इसलिए श्री लाड़िलीजू का न पाना सर्वथा उचित और अनिवार्य है।

श्री सिद्धिजी : अरी सखियों ! अब आचमन कराकर लाल-साहब को ताम्बूल पवाओ, गन्ध लगाओ न ? कि हँसी-हँसी में ही कालक्षेप करना है।

चित्राजी : स्वामिनीजू ! हंस-कुलोत्पन्न, हँसमुख-हंस-किशोर को प्राप्त कर किस किशोरी-हंसिनी का उदार-मन अपने मन-मोहन से मनमानी विनोद करने के लिए अत्यन्त आतुर न होगा।

श्री सिद्धिजी : हे नव-नागर प्रमोद बन-बिहारीजू ! ये सम्पूर्ण सारी सरहजें आपके रूप से रीझकर अन्य स्मृति-शून्य हो गई हैं। रूप-मदिरा का पान करके उन्मत्त हो गई हैं, अस्तु, आप खीझे नहीं, इन्हें अपने रूप-रस की रसिकिनी समझकर स्व-रस का दान दे-देकर दिव्यानन्द का दर्शन कराते रहें।

श्रीरामजी : हे श्री राजकुमारीजू ! हमें स्वयं श्वसुर-पुर में रहकर, कोहवर-कुंज की रसमयी-लीलाओं का आस्वाद एवं आप लोगों के उत्फुल्ल-वदनाम्भोजों से विनिस्सृत विनोदमयी-वार्ताओं का श्रवण करना सामवेद-सुधा से भी सुमधुर और सुखमय प्रतीत हो रहा है।

(कोहवर बिहारी-बिहारिणीजू को ताम्बूलादि देकर, श्री सिद्धि कुँअरि जी आरती कर रही हैं। कोई सखी चमर, कोई विजन, कोई छत्र, कोई पान, कोई इत्र, कोई फूल-माला, कोई जल-झारी, कोई दर्पण और कोई छड़ी लिये चारों ओर सेवा में खड़ी हैं। कोई वाद्य बजा रही हैं, कोई ऊँचे स्वर से गा रही हैं और कोई नृत्य कर रही हैं। रसिक-शिरोमणि रामजी अपने रसमय-नेत्रों से निहार-निहार कर सबको रस-सिक्त कर रहे हैं।)

आरती : नीकी लगै अली आरती, कोहवर बिहारी-बिहारिणी की ।
श्याम-गौर सुखधाम सलोने, रघुकुल-निमिकुल नृपति के छौने ।
अँग अँग ब्याह विभूषण साजे, निरखत काम करोड़न लाजै ।
सुख सुषमा श्रृंगार की शोभा, वरणि सकै नहि भारती ।। आ॰
छत्र-चमर विंजन को लीने, सेवहिं सखि गण भावहिं भीने ।
नृत्य-गान वर वाद्य बजाई, रिझवहिं रीझी सिय रघुराई ।
प्रेम रूपिणी सरहज सिद्धी, रस ही रस को झारती। आरती ।।
शची-शारदा-रमा-भवानी, औरहु सुरतिय सहज सयानी ।
सुन्दर श्याम रूप रिझवारी, भूली भान स्वपुर सुखकारी ।
वरषि सुमन सब जय जय उचरहिं, हर्षण सर्वस वारतीं ।।आरती ।।

[आरती एवं मंगलानुशासन करके श्री सिद्धि कुँअरि जी स-समाज युगल झाँकी का दिव्य-दर्शन करती हुई, पाद-पीठ के पास बैठ जाती हैं।]

श्री सिद्धिजी : हे चित-चोर-चतुर-चूड़ामणि ! मैं एक बात आपसे जानना चाहती हूँ, कहिये तो कहूँ ? क्योंकि प्रश्न का उत्तर न पाने की आशा प्रश्नकर्ता को प्रश्न करने में अवरोध उत्पन्न करती है।

श्री रामजी : हाँ, हाँ, निःसंकोच कहें, कौनसा ज्ञातव्य-ज्ञान अवशिष्ट है, आपको ?

श्री सिद्धिजी : (मंद-मुसकान से) वह यह है कि, चित्त को अपनी चौर्यपटुता से अपहरण करने की कला चित-चोर ने कहाँ सीखी है ? आप श्री विश्व-विलोचन-चोर, चित-चोर आदि नामों से अभिहित होते हैं कि नहीं ?

श्री रामजी : प्यारी, मैंने आज तक किसी के चित्त की चोरी नहीं की। आप मुझ पर झूँठा अभियोग लगाना चाहती हैं क्या ? स्वयं सबका चित्त मुझ में मोहित होकर पुनः चित्ताश्रयी के पास लौटकर नहीं जाता, इसमें मेरा क्या दोष ? विशेषकर रमणियों का ही चित्त मुझ में रमण करता हो, सो बात नहीं, बड़े-बड़े योगियों का चित्त मुझ में रमण करने के कारण ही गुरुदेव ने हमारा नाम राम रख दिया है।

श्री सिद्धिजी : हे नृपति-नन्दनजू ! आपका चित्त तो आपके पास रहे और सबका चित्त आप श्री के अनंग-मोहन अंगों में उलझा हुआ अपने को खो बैठे, यह कहाँ का न्याय है ?

श्रीरामजी : हे रस-वर्धिनीजू ! ऐसी बात नहीं, हमारा चित्त-चंचरीक भी मिथिला में आकर अचानक खो गया है। अन्वेषण करने पर उसे एक कनक-लता का पराग-पान करते पाया, तदनन्तर मैंने योगबल से दूसरे चित्त का निर्माण किया, किन्तु उसे भी अपने से विलग आपके अनुपमेय अङ्गागन में विहरते देखा, विवेक द्वारा स्व-वस्तु तत्व को स्व-समीप वापस लाने का मेरा पूर्ण प्रयास भी असफल रहा। क्या करूँ? कमलिनी का मकरन्द, मधुप के मन को मुग्ध करने में सहज ही समर्थ होता है। तत्-पश्चात् एक के पीछे एक चित्त का निर्माण करता रहा किन्तु वे सब के सब चित्त, मिथिला की मन-मोहिनी सीमन्तिनियों के लिए भी पर्याप्त न हो सके, अस्तु, अब श्रमार्तता के कारण सृज्रन-क्रिया को विराम दे देने से मुझे आपकी पुरी में आकर अपने मन से भी हाथ धो लेना पड़ा है, प्रिये ! उलटे चोर धनिक को डाँटे, वाली कहावत चरितार्थ कर रही हैं, क्या ?

श्री सिद्धिजी : हे रसिकेश्वर जू ! आपका एक मन गया तो गया किन्तु उसकी जगह अनेकानेक-मैथिल ललनाओं के लोभी-मन लाल साहब को सम्प्राप्त हो गये हैं, अस्तु आप श्री घाटे में नही वरन् लाभ में ही हैं। आपका लोक-विलक्षण-औदार्य-प्रकाश क्या यही है ?

श्री रामजी : हे रस प्रवाहिनीजू ! हम रसिक हैं, तो आप रस हैं, अच्छा होगा आपके साथ नित्य-नव्य-भव्य, मधुर-मधुर लीला-लहरी के आस्वाद में सम्मिलित रहूँगा मैं। आपकी रसमयी-लीलायें रस और रसिक के अनुरूप ही होंगी किन्तु कुँअर लक्ष्मीनिधिजी का सदन हमारे हाथ लग जाने के कारण उन्हें तो दर-दर भटकना ही नसीब होगा क्यों ? आप श्री को अटपटा न लगे, तो कमलिनी के मकरन्द का पान मुग्ध-मधुप

करने लगे, अजी ! कमलिनी का प्रयोजन अपने मधुदान से है, कोई भी मधुप उसका उपयोग करे। ठीक है न ?

चित्राजी : हे शान्ति-सुखदायकजू ! आपश्री का निवास सिद्धि-सदन में संशय और संकोच का परित्याग कर सुखार्जन के लिये अवश्य हो जाना चाहिए। श्री मिथिलेश कुमार की चिन्ता न करें, शान्ति-निकेतन में वे अपना निजी-निकेतन कर निवास करेंगे और अप्रतिम शान्ति-सुधा का सुख सम्भोग प्राप्त करेंगे। आप दूल्हा जी को ज्ञात हो जाना चाहिए कि एकान्त में सुनैनानन्द वर्धनजू की शान्ता जू से खूब निबहती है।

श्री रामजी : चित्राजी की वार्त्ता-पद्धति विचित्र ही है। रस-लंपटों के लिये गो-रस प्रदान करने वाली नायिकाओं की भाव-भंगिमा एवं वाक्-चातुरी ऐसी ही होती है।

चित्राजी : बनाजू की बातें तो रस-लम्पटों जैसी ही रस से भरी हृदगतभावों का भंडाफोड़ कर रही है। कहिए, रसिक रायजी ! ऐसी रसीली बातें करना क्या आप अपनी बहनों के पास सीखे हैं ? अन्यथा स्व-पत्नी संयोग के बिना काम-कला का ज्ञान क्यों उत्पन्न हो ?

श्री सिद्धिजी : अरी चित्रे ! तुम्हें हमारे प्यारे भोले-भाले श्री ननदोईजी को ऐसा विलज्जित नहीं करना चाहिये। राजकुमारों को सभी विद्याओं का ज्ञान आरम्भ अवस्था से ही अर्जन करना अत्युत्तम होता है, इसलिये ये कोक-शास्त्र का गम्भीर ज्ञान अत्यन्त अप्राप्य समझकर स्व सदन ही में श्री शान्ताजी से संप्राप्त कर लिये होंगे। यदि घर ही में पाठशाला मिले तो पटु-वटु को दूर देश स्थित गुरु-कुल में सम्मिलित होने की क्या आवश्यकता ?

श्री रामजी : कुँअर-वल्लभे ! चित्राजी के सहित आपकी चतुराई चितचोर के सामने आते ही पंगु हो जायगी आप अपने रस भरे कनक-कलश को रस-लम्पट से बचाने का प्रयास करने पर भी, उसे सुरक्षित रखने में अब असफल ही रहेंगी।

चित्राजी : हे मन-मोहनजू ! हमारी रस पूर्ण कलशी कलानिधि की कला से लुट जायगी तो कोई चिन्ता नहीं क्योंकि हमने अपनी लाड़िली सियाजू के नाते से अपना प्रिय सम्बन्धी समझकर रसिक राय को प्रथम ही सर्व समर्पण कर दिया है, किन्तु एक महान संशय सामने समुपस्थित है, वह यह कि आपके वपु का वर्ण काला कुरंग है और हमारी श्री किशोरी जी कान्ति कनकोज्वला गौर वर्ण है, इससे आप दम्पति में पूर्ण प्रेम का प्रकाश न होने से रसानन्द की उपलब्धि रसिकेन्द्र को दुर्लभ ही रहेगी। अहो ! अपने प्यारे के पीछे-पीछे पश्चाताप लगा रहे, मुझे यह सह्य नहीं।

श्री रामजी : सुनिये, चित्राजी ! भ्रमर का रंग काला ही होता है, किन्तु कनक-वर्णा कमलिनी के मकरन्द-रस का पान करने में, उसे किसी आपत्ति या अवरोध का सामना नहीं करना पड़ता, क्योंकि स्वच्छन्द चारी का सर्वतन्त्र्य, स्वातन्त्र्य सहज ही सर्व सिद्धियों के सम्भोग-सम्प्राति का हेतु है।

चित्राजी : हे नरपति-नन्दन जू ! आपने जिस उपमान का अन्वेषण किया है, वह संगत-सिद्ध नहीं हो सकता क्योंकि मधुकर चेतन और कमलिनी जड़ है। जड़-जगत, चेतन जगत के उपभोग के लिये स्वयं होता ही है किन्तु हमारी गुण-गणार्णवा श्री भूमि-नन्दिनी जू तो तौलने पर नृप-नन्दन जू से प्रत्येक प्रकार अति आधिक्य का अनुसंधान करने योग्य हैं। आप महत्वाकांक्षी हैं। सत का संवर्धन, उच्च प्रतिष्ठा का अर्जन

और धर्म का संरक्षण करने की कामना, आपको सर्वदा वरण किये रहती है इससे उसकी पूर्ति के लिये आप ही नहीं, कोई भी गृहस्थ व्यक्ति को अपनी गृहिणी के प्रसन्नतार्थ प्रेयानुकूलता का आदान-प्रदान करना ही पड़ेगा अन्यथा प्रेय से श्रेय की ओर पदार्पण नहीं हो सकता, अतएव आपको अन्यानुराग, वैयक्तिक-आसक्ति और स्वतन्त्रेक्षा को चन्दन-चर्चिता-चार्वाङ्गी-चन्द्रवदना सुनैनानन्दवर्धिनीजू के चरणों में चढ़ाकर उनकी काय-सम्पत्ति का संभोग करने के लिये उक्त तीनों को भली-भाँति भुलाना ही पड़ेगा।

श्री सिद्धिजी : अरी सहेली ! तुम्हें काया-कल्प की कई प्रक्रियाओं का पूर्ण ज्ञान है, इसलिये कोई सद्य-सुलभ-साधन हो तो हमारे सुकुमार श्याम सुन्दर को शीघ्र बतलाओ, ताकि उपचार के द्वारा उलझी हुई घरेलू बातें सहज ही सुरझ जाँय।

चित्राजी : स्वामिनीजू ! आपकी अनुकम्पा से मुझे काया-कल्प करने की कला का केवल वाक्य ज्ञान ही नहीं, मैं कोयले को कनक के रूप में परिवर्तित करके आनन-फानन नयनों का विषय बना सकती हूँ किन्तु श्री रघुनन्दन जू के आदेश के बिना मैं विशेष विधि का वर्णन भी नहीं कर सकती, क्योंकि आर्ताधिकारी एवं महान मुमुक्षु से ही गुह्यतम-ज्ञान वर्णन करने का निर्देश शास्त्रों ने दिया है अन्यथा ज्ञान का गौरव गर्त में गिरकर नष्ट हो जाता है।

श्री रामजी : हाँ, हाँ, चित्राजी ! प्रसन्नता पूर्वक मेरे श्याम-वपु को गौरांग बना देने की वृहद से वृहद विधि का वर्णन करें। कम से कम उसे श्रवण तो कर लें हम। पश्चात् आपके रस का अनुभव करने के लिये, रसिक का प्रयास असफल न रहेगा। चिन्ता की चिनगारी से आप संतप्त न हों और न मुझे अनधिकारी के आसन में बैठे हुये अपनी आँखों से देखें।

चित्राजी : साधक श्रेष्ठ ! वह साधन यह है कि आप श्री सर्वाङ्गिणी नवल नागरी बनकर श्री मिथिलेश कुमार जू के महल में निवास करें और सिद्धि कुँअरिजी की भाँति, सुनैनानन्दवर्धनजू की मन-भावती अष्टयामिका सरस सेवा करें तो निश्चय है कि उनके अंग-स्पर्श से आप तपाये हुये सुवर्ण जैसे वर्ण वाले हो जायेंगे। यदि आप शंका करें, कि हममें पुरुषत्व है, स्त्रीत्व कहाँ से आएगा, तो उसका समुचित समाधान यह है कि यहाँ के क्या स्त्री क्या पुरुष, सब योग-विद्या में प्रवीण और सत्य-संकल्पी हैं, अस्तु वे आपको कोई औषधि खिलाकर अथवा योगविद्या के प्रभाव से या अपने संकल्प से मुहूर्त-मात्र में नर से नारी बना सकते हैं। आचार्य में श्रद्धा-विश्वास एवं प्रीति तथा उनके वचनों में प्रतीति उत्पन्न कर सुरीति के साथ साधना करने से साधक को किस सिद्धि की समुपलब्धि नहीं हो जाती लालसाहब।

श्री सिद्धिजी : (विनोद में किन्तु गम्भीर बनकर) अरी चित्रे ! मैं तो तुम्हें अपनी अन्तराङ्गिनी हितैषिनी सखी समझती थी किन्तु आज मुझे उजाड़ देने के साधन में तुम क्यों तत्पर हो ? भला बताओ तो सही, जब श्यामसुन्दर रघुनन्दन पुरुष-स्वरूप से ही मिथिलाधिप-नन्दन पर मुग्ध रहा करते हैं तो स्त्रीत्व धारण कर सर्व-विधि-कैंकर्य करने पर, अपने मन-भावना का कैसे परित्याग करेंगे ? साथ ही उन्हें भी ऐसी अनुपम-अलौकिक अर्धाङ्गिनी को पाकर मेरा स्मरण करना क्यों कर अच्छा लगेगा ? अतएव मुझे तो अपना सर्वसुख सौत को समर्पण कर नव-दम्पति के दासीपना से ही निर्वाह करना पड़ेगा।

चित्राजी : (गम्भीरता के साथ विनोद में) स्वामिनीजू ! आप चिन्ता न करें, ऐसा नहीं होगा। चार-छः मास के पश्चात् गौरवर्ण को प्राप्त कर लेने पर रसिक राय को पुनः पुरुषत्व प्रदान करके मैं अवकाश दे दूँगी क्योंकि मुझे कांतिमती कनकाङ्गी किशोरीजू के कैंकर्य के लिए ही इन्हें कुँअर लक्ष्मीनिधिजी की सेवा में रखने का एकमात्र प्रयोजन है अन्यथा लाडिलीजू का कैंकर्य कौन करेगा।

श्री सिद्धिजी : (मुस्कुराती हुई) अच्छा सखी ! ऐसा है तो अवश्य हमारे लाड़िले ननदोईजू को स्वर्ण-छवि संप्राप्त करने के लिए साधन में संलग्न करो, तुम्हारे उपाय से जब राजीव लोचन जू गौर-वपु वाले हो जायेंगे, तब मैं तुम्हें मुँह माँगा पारितोषिक प्रदान करूँगी। अहो ! उस स्वर्णिम-समय की प्रतीक्षा मुझे बहुत दिन न करना पड़े, साधक एवं सिद्धि से मेरा यही अनुनय-विनय पूर्वक अनुरोध है।

चित्राजी : क्यों प्यारेजू ! ठीक है न ? यह सुन्दर-सुखमय साधन स्वीकार है न ? प्रीति-प्रतीति और सुरीति से किया हुआ उपाय अविलम्ब सिद्धि प्रदान करने वाला होता है, मनीषियों के मत से।

श्रीरामजी : (मन्द मन्द मुस्कुराकर) आप दोनों अपनी वाक्पटुता से मुझे छलकर छकाने का प्रयास कर रही हैं किन्तु कहीं गौरवर्ण बनाने वाले वैद्य और वैद्याइनजी ही श्याम रंग में न परिणत हो जाँय क्यों कि उनकी मन और बुद्धि तो श्याम रंग में रंग ही गये हैं, केवल शरीर ही शेष है, अस्तु, लगता है कि भृंगकीट-न्याय से अंतःकरण के प्राधीन-प्रदेश वाला वपु स्वयमेव अल्प समय में श्याम हो जायेगा। अतएव राजकुमारी लोग प्रयत्न न करें, परिणाम में परिश्रम ही हाथ लगेगा। गौर रंग क्या, कोई भी रंग, कारे रंग पर नहीं चढ़ सकता। उल्टे काला रंग अपने रंग में अन्य सभी रंगों को आत्मसात् कर लेता है। आप चिन्ता को चित्त से हटा दें। आप एक वर्ण में परमा प्रीति का अन्वेषण करती हैं, अस्तु मैं आप समेत आप के सभी सम्बन्धियों को गौर से श्याम बनाकर प्रेम की परमाभूमिका में प्रतिष्ठित कर दूँगा, इतना ही नहीं रस का परस्पर आदान-प्रदान करके रस और रसिक की सुन्दर संज्ञा, सम्बन्धी-प्रतिसम्बन्धी दोनों प्राप्त कर लेंगे। पारस्परिक मेल-मिलाप इतनी उच्चस्थिति को प्राप्त हो जायेगा कि उसे अनन्त-अनुपमेय और अनिर्वचनीय कह करके ही सांकेतिक भाषा द्वारा अन्य को किंचित जनाया जा सकता है प्रिये।

श्री सिद्धिजी : (मुस्कुराकर) अरी चित्रे ! हमारे प्यारे सम्बन्धीजू को संकुचित क्यों कर रही हो ? श्याम सुन्दर की बड़ी-बड़ी बातों से तुम्हें स्पष्ट हो ही गया होगा कि उन्हें पुरुषत्व अपेक्षित है, स्त्रीत्व ग्रहण करने में लज्जा व संकोच है, इसलिये ननदोईजू अपने घर ही में स्वतन्त्र शान्ताजी के समीप अपने पुरुषत्व को प्रकट करते हुये, उनकी अहर्निषि एकान्तिक-सेवा करके सुफल मनोरथ हो जायेंगे क्योंकि अपने अंग-संग से शान्ताजी भी श्याम को गौर बनाने की क्षमता रखती हैं।

चित्राजी : हाँ, हाँ, स्वामिनीजू ! आपने यह ठीक ही कहा है, इनके कल्याण के लिये दो ही ठौर हैं, तीसरा नहीं। पुरुषत्व पसन्द हो तो शांति जी की सेवा में नियुक्ति इनकी कर दी जाय, स्त्रीत्व रुचे तो मिथिलेश कुमार हैं ही ।

श्री रामजी : आप लोगों का हठ है, तो हम आप ही की सेवा में रहकर, आपके अनुरूप वर्ण को प्राप्त कर लेंगे।

चित्राजी : न, न, नरपति–नन्दनजू ! हम लोगों में वह तत्व और वह शक्ति नाम मात्र नहीं है कि जिससे श्याम को गौर के रूप में परिवर्तित किया जा सकता है, यह गुण तो आपकी भगिनि और श्री किशोरीजू के भ्राता में ही है, अन्यत्र दुर्लभ ही नहीं अप्राप्त है।

श्री सिद्धिजी : प्यारे ! चित्रा का कथन सर्वथा सराहने योग्य है। यथार्थतः सब गुण सब में नहीं होते जैसे अपने सौन्दर्य शक्ति एवं शील से जन–जन के जीवन पर अखण्ड–आधिपत्य स्थापित कर लेने की अर्हता आप श्री ही में है, अन्य में नहीं, अस्तु मेरी सहचरी के गुरु–वचन ग्रहण करने योग्य हैं।

[इतने ही में एक नख–शिखान्त भूषण भूषिता सुन्दरी का प्रवेश..]

चित्राजी : (देखते ही उठकर) सुभगे ! आपका स्वागत है, आप कहाँ से आ रही हैं? कौन हैं क्या नाम है और यहाँ आने का क्या प्रयोजन है ? आप स्वयं की प्रभा से प्रान्त को प्रकाशित करती हुई, सुख का संचार तो कर रहीं हैं किन्तु देवी जी का मुखाम्भोज किस कारण से पूर्ण विकसित नहीं प्रतीत हो रहा है ?

सुन्दरी : सौभाग्य–शालिनियों ! मैं अयोध्या–नगरी से आ रही हूँ। दाशरथि राम की बड़ी बहिन हूँ, मेरा नाम शान्ता है, अपने अनुज से मिलने का ही एक मात्र प्रयोजन है।

चित्राजी : सौम्ये ! मनो–मालिन्य का मौलिक कारण आपने गुप्त ही रखा, क्यों? बताइये तो सही भरसक आपके मुखोल्लास–विवर्धन के लिए हम पूर्ण प्रयत्न करेंगी।

सुन्दरी : (अश्रु बहाकर) हाय ! कुछ कहने की हिम्मत नहीं होती।

चित्राजी : आपके अनुज कौशल पति–कुमार सर्व–समर्थ हैं, उनके रहते आपको कष्ट का अनुभव कैसे ?

सुन्दरी : आर्ये ! मिलने तो अपने बन्धु से आई किन्तु एकाएक उनसे कुछ कहने का साहस नहीं कर पाती। क्या आप मेरी ओर से पुरुषकार कार्य करेंगी ?

चित्राजी : किसी को शोक–सागर में निमग्न होते हुए देखकर श्री विदेह–राज–नन्दिनीजू की ऐसी कौन सम्बन्धिनी होगी जो तत्क्षण प्रयत्न न करेगी ? आप अपने हृदयोद्‌गार प्रकट करें।

सुन्दरी : (संकोच के साथ धीरे से) मेरे स्वजनों ने मुझ जैसी रस–रूपिणी सुख–सम्प्रदायिनी कन्या को मेरा मन न रहते हुए भी, एक जटाजूट धारी बाबाजी को दान कर दिया है, जिनका नाम श्रृंगी ऋषि है। आप लोग नाम से ही उनके रूप–शील और वय का अनुमान कर सकती हैं।

चित्राजी : कामिनि ! आपकी वैवाहिक–क्रिया का सम्पादन अवश्य राज–पुत्री के अनुरूप नहीं किया गया। रामजी के लिये, तो विशेष लज्जा का विषय है किन्तु क्या करेंगी आप ? विधि के विधान पर संतोष रखें।

सुन्दरी : सखी ! बाबाजी के साथ दिन काटना ही दूभर हो जाता है, रात्रि तो उनका दर्शन करते ही मुझे अपने सुख से वंचित कर देती है। कामिनियों के लिए स्वानुरूप पति को पाकर एकान्त में एकमात्र रजनी ही तो मनोरञ्जिका सिद्ध होती है, हाय ! मेरे भाग्य में वह आनन्द कहाँ ? अनुज रामभद्र भी इस पर बिलकुल विमर्श नहीं करते। मेरी दयनीय–दुर्दशा से भी दया नहीं आती उन्हें, और कहलाते हैं, दयासिन्धु।

चित्राजी : हे सुखाभिलाषिनी जू ! आप अपना मन्तव्य प्रकट करें क्योंकि संकोच और भय से काम–केलि का आनन्द कामिनियों को नहीं उपलब्ध होता।

सुन्दरी : (संकोच के साथ धीरे से) जटाधारी बाबाजी को न्यायालय में त्याग-पत्र देकर, किसी सुन्दर राजकुमार को वरण कर अपनी भर्तृ-भाव की भव्यता एवं अनिम्न-निष्ठाओं की नव्यता से साथ में रहकर परस्पर भर्ता-भार्या के संयोगानन्द का आदान-प्रदान होता रहेगा, यही मेरे मन का महान मनोरथ और मन्तव्य है, चित्राजी !

चित्राजी : रति-रस की रसिकिनी ने क्या रसोत्पादक व आनन्दाभिवर्धक सुन्दर, सुखमय-रसिक श्रेष्ठ पुरुष का अन्वेषण किया है ?

सुन्दरी : (लज्जा के भाव में भर कर) चित्राजी ! चञ्चल-चित्त-चंचरीक मिथिला सर-सरोरुह मिथिलेश-कुमार लक्ष्मीनिधिजी के मधुर-मकरन्द का पान करने के लिये लालायित हो रहा है।

चित्राजी : शान्ताजी ! आपके विचार, उच्चार और आचार भवानन्द-लुब्धा भामिनियों के अनुरूप ही हैं क्योंकि देहाभिमान की केंचुली पहनकर ही उक्त रस का परिशीलन किया जा सकता है। भव-रस के रसिकों ने मोक्ष-रस का भी उत्सर्ग भव की वेदी पर करके भय, लज्जा, घृणा और ग्लानि से अपने को मुक्त कर लिया है संसृत-सुख सृजनात्मक आपके मनः केन्द्र ने अत्यन्त उर्वरता के कारण ही श्री श्रृंगी-ऋषि से उकताकर स्वैरता का सम्मान किया है। श्री सुनैनानन्द वर्धनजू ही वास्तव में शान्ति-सुख का उपभोग करने के योग्य हैं, आपका मनोरथ और अन्वेषण आपके अनुरूप है। मुझे पूर्ण विश्वास है, कि इस कार्य में श्रीराम जी की सम्मति और सहायता शान्ताजी को सम्पूर्णतया संप्राप्त हो सकेगी।

सुन्दरी : चित्राजी ! मिथिलेश-कुमार के अनंग-मोहन अंगों का अवलोकन कर मैं अपने को सम्हालने में असमर्थ हो गई हूँ, उनके मिलन की त्वरा मेरे चित्त को अन्य विचारों का स्पर्श नहीं करने देती, अतएव अब शीघ्रता के साथ हमारे अनुज श्याम सुन्दर से स्वीकृति हमें मिल जानी चाहिये।

चित्राजी : शान्ताजी ! धैर्य धारण करो, मेरी और आपकी पारस्परिक चर्चा आपके अनुज सुन ही रहे होंगे क्योंकि उनकी श्रवणेन्द्रिय सूक्ष्मातिसूक्ष्म है, फिर भी मैं आपके मनोरथ-पूर्ति के लिए उनसे सविनय पुरुषकार कार्य करती हूँ।

सुन्दरी : चित्राजी ! आपकी चातुरी से चतुर चूड़ामणि राम रीझकर प्रसन्नता से अपनी सम्मति दे देंगे, अस्तु, आप बड़ी चतुरता के साथ उनसे बात करें।

चित्राजी : क्यों नहीं सुन्दरी जी ! अवश्य, अवश्य आपकी अनुमति का उपयोग करूँगी। अरी, इसमें हमारे निमिकुल-कुमार का भी तो हित सन्निहित है, एक की जगह दो पांव पलोटने वाली हो जायेंगी।

श्री सिद्धिजी : अरी चित्रे ! तुम्हें, मुझे मटिया मेट करने की ही सूझी है, क्या? अभी अभी कुछ समय पहले श्री जानकी-बल्लभ लाल जू को हमारे घर में नारी बनाकर रखने की वार्ता करके, मुझे गृह से अनादर दिलाने का उपाय कर रही थी, अब तो बनी-बनाई स्पर्श-सुखदा शान्ता सुन्दरी को मेरी सवत बनाने जा रही हो, क्यों ?

चित्राजी : स्वामिनीजू ! आप स्वयं सिद्धा हैं, असिद्धता आपका स्पर्श नहीं कर सकती। अपनी कृपालुता से इस कामिनी की काम-लता को पुष्पित होने दें, सोचें तो सही,

रामजी के बहन की अभिलाषा पूर्ण होने के लिये, आपसे उदारता-पूर्वक अबाध्य अनुमति मिलनी चाहिये कि नहीं, श्रीरामजी का प्रेम तदीयत्वानुराग से ही पराकाष्ठा को प्राप्त होता है, अतएव आप स्वार्थ का सर्व त्यागकर परमार्थ पथ का अन्वेषण और आलिंगन करें। ठीक है न ?

श्री सिद्धिजी : सखी ! तुम जो कहोगी वही करूँगी। तुम्हारे मन के प्रतिकूल आचरण अपने मन में न रहने देना, अपना कर्तव्य समझती हूँ क्योंकि तुम मात्र मेरी सर्वभावेन हितैषिणी सहचरी हो।

चित्राजी : (सुन्दरी के साथ आगे बढ़कर) हे रसिक-शिरोमणिजू ! ये आपकी बहन श्री शान्ताजू, मनसिजार्त्ता होने के कारण व्यथित-मना आपसे सीधे संलाप न करके मेरे द्वारा आपके श्रवणों तक अपना मनोरथ पहुँचाना चाहती हैं और उस पूर्ति के लिये आप श्री की अनुमति और आदेश की प्रतीक्षा में हैं। अपने आपकी कामना से रति-रस का यथार्थ अनुभव करने के लिये, मन-मोहन मिथिलाधिप नन्दन जू को सर्वस्व-समर्पण कर वरण करना चाहती हैं। अतएव श्री श्रृँगी ऋषि जी को त्याग-पत्र दे देने में बाबाजी के साले भी सहमत हो जाँय, जिससे कामिनी का काम पूर्ण हो जाय। आप इस महत्वपूर्ण कार्य से महान-पुण्य लाभ का अर्जन कर सकेंगे क्या ? संकोच का संचय न करें, श्री सिद्धिजी सहित आपकी सभी सारी-सरहजों की सम्मति आपको लिखित प्राप्त हो जायेगी। बेचारी बहन शान्ता सिद्धि कान्त की कान्ता बनकर, काम-केलि का अनुभव कर बाबाजी के जटा-जनित अब तक के कष्ट को भूल जायेंगी और आपको अपने अनुकूल बहनोई मिल जायेंगे। कहने-सुनने में भी अच्छा लगेगा, अभी पूछने पर यही कहना पड़ता है, वह भी शिर-नत करके कि हमारी बहन एक श्रृँगी बाबा को ब्याही है। कहिये, ठीक है न ? हम सबकी सही सम्मति है कि इस सुन्दर सुअवसर से आप तनिक भी न चूकें।

श्री सिद्धिजी : प्यारे ! चित्रा जी की सम्मति सम्यक् प्रकार से भविष्य में शान्ता जी को शान्ति-प्रदायक सिद्ध होगी। आप दीनानुकम्पी हैं, इन दुखिया पर दया करें। आप के गौरव की रक्षा करने के लिये ही ये आप श्री की अनुमति चाहती हैं अन्यथा आपका विचार न प्राप्त करने पर भी स्वेच्छा से अपना मनोरथ अविलम्ब पूर्ण कर लेंगी, इससे अच्छा तो यही है कि आप भी अपनी बहन के हाँ में हाँ मिला दें।

श्री रामजी : नाट्य-कला का नैपुण्य नारियों में खूब देखने को मिलता है, कुँअर-वल्लभे ! यह आपकी बहन है बहन ! अयोध्या-वासियों की ऐसी स्वेच्छा-चारिणी बहनें कहाँ ? ऐसी तो मिथिला-वासियों को ही सुलभ हैं, प्रमाण की आवश्यकता नहीं, हमने स्वयं अपनी आँखों से प्रत्यक्ष भली-भाँति अवलोकन कर लिया है कि मिथिला की ब्याही-अनब्याही प्रत्येक वर्ण की बालायें मेरे काले-कलूटे के ही पीछे पड़ गई हैं और आप लोगों की कहें ही क्या ? अपने रंग में रंग डालने के लिये ही प्रयत्नशील हैं, तो भला बतलायें कि यहाँ की काम-मोहित कुमारियाँ कनकवर्ण के कमनीय-कुमारों को अपना आलिंगन देने से कैसे वंचित रखी होंगी ? अतएव अब हम पर ठगने की विद्या का प्रयोग न करें क्योंकि हमसे स्वयं आप ठगी गई हैं। यदि कुँअर लक्ष्मीनिधिजी की प्रसन्नता हो, तो इस आपकी निर्लज्ज बहन का पुनर्व्याह अपने साथ कर सकते हैं, ठीक है न ? मेरी अनुमति पा गई न ? अब तो नवीन विवाह में हमें भी आमंत्रण मिलेगा, क्यों ? और आगे चलकर भी

अपने को लाभ ही लाभ है। बारी बारी से बच्चों के जन्म में पहुँनई-नेग और विदाई की बहुतायत रहेगी ही, क्यों ?

[मंद-मंद मुसकान से अबलाओं के मन को आकर्षित करते हुये, कोहवर-बिहारीजी चुप हो गये।]

चित्राजी : अरी बहनों ! लालन पढ़े-पढ़ाये हैं । इन्हें पढ़ाने वाली हम लोगों की क्रिया नहीं चलनी है, चितचोर को देखते ही जब चित्त चोरी चला जाता है, तो बिना चित्त के किसकी चतुराई चलेगी। चलो, चलो, सब ! चोर के पास रहना अपने को खोना है। इनके सायंकालीन-कृत्य का संपादन होना भी आवश्यक है, न ?

[सब समयोचित सेवा में लग जाती हैं....]

पटाक्षेप

....

द्वात्रिंशः दृश्यः ३२

[सिद्धि-सदन में अनेकानेक हास-विलास की लीलाओं का आयोजन करके (जैसे, चौसर-क्रीड़ा, रामजी की जूतियों को कुल देवी बनाकर, उन्हीं से पुजवाने की चेष्टा, श्याम-सुन्दर के सो जाने पर उनके मुख में काजल लगाकर, आभूषणादि-चोरी कर छकाना, इत्यादि) **सम्पूर्ण सारी-सरहजें रामजी को रिझाती हैं और स्वयं रीझ-रीझकर रस-वश जन्मफल को ग्रहण करती हैं। चौथी छूटने के दिन सिंहासनासीन श्री रामजी को उनकी अलबेली सरहज श्री सिद्धि कुँअरिजी अपने हाव-भाव तथा पान-इत्र-मालादि की सेवा से प्रसन्नकर स्वयं नीरांजन और मंगलानुशासन करती हैं, पुनः अनेकों बलैया लेकर, उनके पाणि-पंकज का स्पर्श करती हुई अपनी अभिलाषा प्रकट करती हैं।]**

श्री सिद्धिजी : हे रघुकुल-कमल-दिवाकर जू ! आज चौथी छूटने का सुन्दर शुभ मुहूर्त है, आपको ज्ञात हो जाना चाहिये कि निमिकुल की प्रचलन पद्धति के अनुसार आज के दिन दूलह-दुलहिन और सारी-सरहजों का परस्पर रंग-अबीर के बौछारों द्वारा होरी-युद्ध मनाया जाता है, जिसे हरिद्रोत्सव कहते हैं। अतएव आपकी अनुमति चाहती हूँ, कहीं पिचकारियों का प्रहार, प्यारे को असह्य न हो जाय, सिरस-सुकुमार तथा कुसुमाति-कोमल सुअंगों के मन-मोहक माधुर्य में रंग और अबीर की अनवरत-वर्षा का कठोराघात चित्त को चंचल न कर दे।

श्री रामजी : हे कनकाभे ! कमल-कली को सुरक्षित रखने की चिन्ता आप को होनी चाहिये। कहीं मदोन्मत्त-काला करिवर कमलिनी के बन को तहस-नहस न करदे। हम रघुवंशी-वीर-क्षत्रिय कुमार हैं। काल के दंड से भी भयभीत न होकर प्रमुदित उसके साथ सदा युद्ध करने को समुद्यत रहा करते हैं। यहाँ तो मिथिला-सीमन्तिनियों के संग मनोरंजक मनोबल को विवर्धन करने वाली रंग-केलि है। अवश्य, अवश्य होरी-समर (हरिद्रोत्सव) की तैयारी आपके नेतृत्व में होनी चाहिये।

श्री सिद्धिजी : प्यारे की सदा जय हो, सदा जय हो। धन्य है, रंगेश्वर राम के औदार्य को। हम सब ललनाओं के अक्षय-लाभ के लिये ही लोने लाल साहब, लोनी-लड़ैतीजू के संग प्रति-पक्षी के रूप में असंकीर्ण पक्षपात करते हुये, अपने कटाक्षपात और अनोखे-अंगों की अतुलनीय आभा प्रकट करके, आज रंग युद्ध करेंगे।

श्री रामजी : हमें तो आज आप ही से द्वन्द-युद्ध करना है। आप चाहें जिस वीर-वरण्या को स्वतंत्रतापूर्वक अपने आगे-पीछे, दायें-बायें रख सकती हैं, हमारा कोई विरोध नहीं।

श्री सिद्धिजी : हे रंग बिहारीजू ! अच्छा होगा, कि आप अपनी ओर की आवश्यक तैयारी शीघ्र कर लें ताकि सुअवसर का स्वागत कर अनवसर की कटीली-झाड़ियों में भटकना न पड़े।

श्री रामजी : हे रंग-रसवर्धिनीजू ! हम आवश्यक तैयारी के साथ अपने अमर-तुल्य अनुजों को लेकर आपके रंग-महल में अविलम्ब अभी आ रहे हैं। चलकर आप भी ससमाज, समय से वहाँ उपस्थित हों। प्रेम का जीवन प्रेममयी-लीलाओं के अनुभवानन्द की प्राप्ति के लिये प्रेरणा प्रदान तो करता रहता है, साथ ही प्रेमी को प्रेमास्पद के प्रेममय-अङ्गों का आलिंगनादि पाने के लिये त्वरान्वित और अधीर भी किये रहता है अतएव निश्चित समय का उल्लंघन हमसे न हो सकेगा, अपने की आप जानें।

श्री सिद्धिजी : चित्रे ! वीर-बाँकुरे रघुवंशी सरदार होरी समर के समुत्साह से सम्पन्न, समय से समराङ्गण में पधार रहे हैं, अस्तु, आप भी श्री किशोरीजू के साथ अपने दल-बल और सामयिक-सामग्रियों तथा तदनुरूप अस्त्र-शस्त्र-समूहों को लेकर इनसे पहले युद्ध-भूमि में पहुँचने का प्रयास करें ताकि हम लोग इनका स्वागत, सम्मान पुरस्सर करके सुगमता के साथ कर सकें।

चित्राजी : स्वामिनीजू ! अपनी ओर की सारी-सामग्रियाँ अन्य सहेलियों तथा दासियों के द्वारा रंग-स्थल में पहुँच चुकी हैं, श्री किशोरीजू सहित अपनी ओर का सारा समाज आपकी प्रतीक्षा में है। अतएव आप पधारें, राजकुमारों को भी शीघ्रता के साथ रंग-भूमि में पहुँचना चाहिये।

[श्री सिद्धिजी, चित्रा के साथ रंग-महल में जाकर समाज में सम्मिलित हो जाती हैं। समय से अनुजों को लिए हुये, रंगेश्वर श्री रामजी भी रंग-महल में पहुँचकर अपनी सारी-सरहजों के नेत्र-विषय बन जाते हैं। आसनादि देकर श्री सिद्धि कुँअरिजी ने अत्यन्त आदर के साथ चारों दुलहों का यथाविधि पूजन और मंगल-स्तवन करके अभिवादन किया, तदोपरान्त अपनी नयन-सयनि तथा मनोहर-मंद-मुसकान से मन-मोहन रामभद्रजू के मन को मुग्ध करती हुई, मधुर वाणी में मीठी बात बोलीं....]

श्री सिद्धिजी : मेरे रसिकेश्वर राम ! आपकी दृष्टि के अनुसार ही सृष्टि का सृजन होना स्वाभाविक है। आज आपकी रसमयी-अवलोकनि, अपनी ओर की अलियों के देहेन्द्रिय, मन, बुद्धि और आत्मा को रसमय बना चुकी है। केलि की प्रारम्भिक-स्थिति में ही जब हम सब बालायें रस-स्वरूप रावरे अङ्गों में रमण करने लगीं, तो होरी-समर की प्रक्रिया बिना चेष्टा के कैसे संभव हो सकेगी और समराङ्गण में

श्री किशोरीजी की विजय–पताका डंके की आवाज के साथ कैसे फहरकर, आपको उनका गुलाम बना पायेगी ?

श्री रामजी : युद्ध–प्रिये ! अपने प्रतिपक्षी नायक से मंत्रणा करना वीरोचित वार्ता नहीं है। रंग–युद्ध की प्राथमिक–प्रहार–पद्धति से ही जब सब सखियाँ व्यामोह को प्राप्त हो गई तो फिर अन्य–अन्य अस्त्रों के भिन्न–भिन्न प्रहारों से आप लोगों के मर्मस्थल, मर्मान्तक–पीड़ा से व्यथित होकर सामने युद्ध करने या पीठ देकर पीछे हटने में अबाध्य अवरोध करेंगे। इसलिये हमारी सम्मति है कि आप स्वपक्षी नायिका की अनुमति लेकर बिना युद्ध के विजय–माल हमारे गले में पहनावें या युद्ध करें। इसके अतिरिक्त आपको अन्य पंथ का आश्रय औचित्य के अनुरूप न होगा।

श्री सिद्धिजी : (मंद मुसकान से श्रीरामजी की ओर दृष्टि–निक्षेप कर व किशोरीजू के पास आकर) हे श्री राजकिशोरीजू ! राजकुमार राघवेन्द्रजू के कैशोर्य–कला की कमनीयता ने सम्पूर्ण कामिनियों की कान्ति एवं आत्मबल को आत्मसात करके, उनके तेज श्री को उसी प्रकार नहीं रहने दिया जैसे दिन में भगवान भास्कर, चन्द्रकान्ति को। अतएव अपने समाज में शिथिलता आने से होरी–समर में सखियों की विजय कैसे संभव होगी ?

श्री किशोरीजी : भाभीजी ! जिस समय आप अपनी ननँद के साथ प्रति–पक्षियों के सम्मुख ससमाज समर–भूमि में पधारेंगी, उस समय सूर्यवंशी सूर्य की रश्मियाँ उनके श्री अंगों में ही प्रविष्ट कर जायेंगी जैसे पूर्णिमा के दिन पूर्ण निशाकर का आगमन होते ही दिवाकर अस्ताचल को भाग जाते हैं। अस्तु, आप अपने दल–बल को लेकर, मेरा मुखावलोकन करती हुई मनोबल के प्रचण्ड–प्रताप से सूर्य–वंशियों के अभिमान को आज मिट्टी के कच्चे घड़े के समान चूर–चूर कर दें। निमिकुल–नन्दिनी की विजयश्री आपके उत्साह के साथ है। नगाड़ों में चोट दी जाय, सम्पूर्ण सखियाँ आपकी अध्यक्षता में आज अबीर–गुलाल और रंग भरी–पिचकारियों के मार से दिन को अरुण–रात्रि बना दें तथा गर्वीले राजकुमारों के गर्व को गर्त में निक्षेप कर स्व–छवि में छके–छबीलों के छक्के छुड़ा दें।

श्री सिद्धिजी : सखियों ! श्री विदेह–वंश–वैजयन्ती विदेहराज–नन्दिनीजू का प्रेरणात्मक उत्साह और अनुमोदन चक्रवर्ति कुल–कुमारों को आज रंग–केलि के युद्ध में अवश्य पराजय करके श्री लाड़िलीजू के दल में बार–बार विजय का डंका बजने को बता रहा है। अस्तु, सभी समाधान–चित्त से होरी–समर का श्री गणेश करें। ठीक है न ?

चित्राजी : स्वामिनीजू की आज्ञा और श्री किशोरीजू के तेज–बल–प्रताप से आज रघुवंशियों की वीरता पानी में डुबो देंगी। उन्हें अपनी हार मानकर श्री किशोरीजू के कृपा–वैभव को प्राप्त करने के लिये नतमस्तक होना पड़ेगा।

[दोनों ओर से अनेक–अनेक वाद्य बजने लगे। नगाड़ों की चोट से दोनों ओर उल्लास छा गया। फाग–गान से रंग–मद का मदीलापन अपना साम्राज्य स्थापित कर सबके अंगों को झुमाने लगा। प्रथम श्री सिद्धिजी ने सम्मान के साथ श्री किशोरीजू के कर–कमलों द्वारा श्री राघवेन्द्रजू के कपोलों में गुलाल लगवाया प्रत्युत्तर में श्रीरामजी ने श्री किशोरीजू के गालों में हलके हाथों गुलाल लगा दिया।

युगल किशोर-किशोरीजू को परस्पर स्पर्श जनित असाधारण व अलौकिक आनन्द की अनुभूति हुई, पुनः अपने-अपने दल में युगल-सरकार खड़े हो गये। श्रीधर कुमारी ने भी चारों राजकुमारों का स्वागत इत्र, पान, अबीर और गुलाल अर्पण करके किया, चारों भाइयों ने अपने सरहज के ऊपर किंचित-किंचित अबीर-गुलाल और रंग छोड़कर केलि का श्री गणेश किया।]

श्री सिद्धिजी : रसिक राय को रंग-केलि का आस्वाद लेने की बानि पड़ी है किन्तु यहाँ अवधवाली आपकी बहनों का बल नहीं है कि जिनके साथ आप अपनी सुकुमारता की रक्षा-करते हुये क्रीड़ा करते थे। यह मिथिला है मिथिला ! यहाँ तो निमिकुल-नारियों की जमात है, अच्छा होगा कि आप रंग-भरी-पिचकारी और अबीर की झोरी श्री किशोरीजू के सामने रखकर हाथ जोड़ें, नत-मस्तक हों और पिछले पाँव हटते हुये, वापस चले जाँय !

श्री रामजी : हे व्यर्थ वीराभिमानिनि ! वैरागी की बालाओं की वीरता से भला क्या प्रयोजन, क्या परिचय ? रंग-केलि की कला को वे बेचारी क्या जानें, यह क्रीड़न-क्रिया केवल रस में रागाधिकार रखने वाले वीरमानी रसिकाधिराजों को ही ज्ञात है, वे ही अपनी कला-कुशलता से समराङ्गण में विजय-श्री को भी अपना सकते हैं अतएव हम आपका स्वागत करते हुये कहते हैं कि हमारे साथ होरी-समर न करके वैरागी-वंश की कुमारियाँ, वैरागी-वंश के कुमारों के साथ घर ही में युद्ध कर अपनी अभीप्सा को पूरी कर लें, "जैसे को तैसे मिले तब पूरा संग्राम" की कहावत भी चरितार्थ हो जायगी अन्यथा रघुवंशी-लालों के साथ रंग-केलि करने में निमिवंशी-ललनाओं को आकुल-व्याकुल होकर अस्त-व्यस्त-वस्त्राभूषणों के साथ भागना ही हाथ लगेगा। महत्वाकांक्षिनियों को अकीर्ति-सौत के संलाभ से सवतिया-डाह के डंडे प्रत्येक दिन रात्रि और प्रत्येक क्षण खाने पडेंगे।

श्री सिद्धिजी : वीर-वर ! यहाँ यक्ष-सुता ताटका नहीं है कि जिसे आपने एक बाण का निशाना बना कर (बेचारी कामिनी का) काम तमाम कर दिया, यहाँ तो लोक-प्रसिद्ध मैथिलानी हैं, मैथिलानी ! जिनके कजरारे-कौटिल्य-कटाक्षों के बाणों से आप श्री बुरी तरह बिंध जायंगे और चारों कुमारों के कर-कञ्जों से पिचकारियों समेत अबीर की झोरियाँ, अपने आप छूटकर भूमि में गिर जायेंगी, तब सारी वीरताई, धीरताई और चतुराई में पानी फिर जायेगा अस्तु, बड़ी वीरता का बखान करं अपने मुख मियाँ मिट्ठू न बनें आप ! फूल-वाटिका की स्मृति लाल साहब के चित्त-पटल पर अंकित नहीं है, क्या ? जिसकी खुमारी ने उतरने का नाम न लेकर, आप श्री को गुरु-जनों के आगे निर्लज्ज बनाकर तत्-विषयक वार्ता करने की प्रेरणा दी थी।

श्री रामजी : कुँअर-वल्लभे ! हमें ज्ञात है कि किसी विशेष बल को प्राप्त कर आप हमको ऐसे वचन सुना रही हैं किन्तु हमें, आप इस रंग-युद्ध में परास्त करने के लिये कदापि समर्थ नहीं हो सकतीं। हम कुँअर लक्ष्मीनिधिजी नहीं हैं, जिन्हें आपने रति-रस-युद्ध में बार-बार हराकर वैरागी बना दिया है।

चित्राजी : तभी तो मिथिलेश कुमार आपके अनुरागी बन गये हैं, जबकि सिद्धि कुँअरिजी से, आप में अनन्तगुना रति-रस का सुख उन्हें समुपलब्ध है। आप जैसी

सर्व विधि बनी–ठनी–वनिता जिसे संप्राप्त हो तो वह वैरागी नहीं, बड़भागी रस–रागी है, उसे एक नहीं अनेक सिद्धियों के त्याग में कोई आपत्ति नहीं।

श्री रामजी : (संकुचित मुद्रा में) अच्छा... ! आप में तो और–और अनोखा रंग दीखता है, उसी में इतराई हुई झमक–झमककर रस ही रस की बातें कर रही हैं। आज अंगों के अच्छी तरह मसल जाने से सारी शेखी उतर जायगी, क्योंकि कोई रस–लोलुप आज आपके सर्वाङ्गीण रस को पी–पीकर छबीली को छोई बनाये बिना न छोड़ेगा।

चित्राजी : लाल साहब ही जब से आये हैं, तब से अन्य से बातें करते हुये भी, मेरी तरफ कनेखी मार–मारकर देखने से बाज नहीं आते। लगता है, कि निशाना मेरे ही ऊपर है किन्तु तीर खाली ही जायगा। आप अपने को देखिये, कहीं गरूरता की गठरी शिर से गर्त में गिर न जाय। कहीं विपरीत–क्रिया का प्रयोग हुआ, तो रसिकेश्वर को लेने के देने पड़ जायेंगे। अस्तु, अवध में नहीं, हम मिथिला में हैं, इस स्मृति से आप किसी क्षण पृथक न हों।

श्री रामजी : हे चित्राजी, बार–बार धमका रही हैं हमें ? आखिर में पौरुष–हीन अबला से पूँछते हैं हम, कि करोगी क्या ? परम–पुरुषार्थियों के आगे नगण्य–नारियों की वार्ता भी नगण्य होती है, अस्तु, अभयत्व के आगे भयत्व को झुकना ही पड़ेगा।

चित्राजी : आज आपको अबीर और गुलाल की बहुल वर्षा से आहत कर बन्दी बनायेंगी, और क्या करेंगी ? सुनिये....रघुवंशी सरदार को पकड़कर अपने समाज में ले आयेंगी, चोली, चुनरी, लहंगा पहनाकर, माथे में बेंदी तथा सौभाग्य–सूचक सिंदूर धारण करायेंगी, फिर भैया की दुलही बनाकर नाच नचायेंगी और आगे की न पूँछिये, जो मन में भायेगा वही करायेंगी। जब श्री किशोरीजू की शरण पुकारियेगा, तब कहीं आपको छुडायेंगी, यही चित्रा। चित्रा से अन्य कोई छुड़ाने वाली सखी नहीं है, समझे ?

श्री रामजी : चलिये...बातों ही बातों में समय का भुगतान मत करें, मैं काल से भी भयभीत होने वाला नहीं, फिर मिथिला पुर की छोरियों से क्या ?

चित्राजी : अच्छा, नहीं मानते हैं, लाल साहब ! तो चलें समर में। आज गालों में गुलाल मसल–मसलकर तथा गल गुच्चे लगा–लगाकर और अङ्गों के दुःसह दरेरों से वीर वर की सारी बहादुरी का मजा मशकूक और किरकिरा न कर दूँ, तो सिद्धिजी की सहेली नहीं, फिर आप अपनी खूब हाँकेंगे, अभी क्या।

श्री सिद्धिजी : अच्छा है। प्रथम प्रहार वीर–शिरोमणि कौशल–किशोरजू की ओर से आरम्भ हो क्योंकि प्रति–क्षेत्र में प्राथमिकता आप श्री की ही है, पश्चात वैरागी की बेटियाँ भी यथाशक्ति उत्तर देने से मुख न मोड़ेंगी। देखें, आज किसका शिर ऊँचा होता है।

श्री रामजी : प्यारे अनुजों ! मिथिलानियों के नयन–बाण से अपने को विवेक–ढाल के द्वारा बचाकर, अबीर की वृहद् वर्षा से अन्धकार मचा दो। पिचकारी मार–मारकर इनके अंगों को व्यथित कर दो, रंग की सरिता में सबको बहा दो।

[विदूषक का प्रवेश...]

विदूषक : (झुककर साञ्जलि) दादा ! दण्डवत दादा ! जंग बहादुर ने अपने श्रवणों से ज्यों ही सुना कि आप श्री सिद्धि–सदन के प्राङ्गण को समराङ्गण बनाकर रंग–युद्ध

करने पधारे हैं, त्यों ही उनको ताव आ गया और आव गिने न ताव, मूछों में हाथ फेरकर अपने दादा को द्वन्द्व-युद्ध में विजय प्राप्त कराने की त्वरा से वे चले आये। आपने विवेक की ढाल देकर, मिथिला की नारियों के नयन-बाण से बचने का बड़ा सुन्दर साधन हम लोगों को बताया है किन्तु....(धीरे से) यहाँ बड़े से बड़े अपने विवेक की ढाल से अपने को नहीं बचा सके हैं, भैया ! देखेंगे आज बहादुरों की बहादुरी कहाँ तक कामयाब सिद्ध होती है।

[अनुजगण राघवेन्द्र सरकार की जय। रघुनन्दन रामजी की जय । रसिकेश्वर रंग बिहारी राघवजी की जय-जयकार करते हैं।]

श्री लक्ष्मणजी : आपका अनुशासन पाकर आज सिद्धिजी समेत चित्रादि सखियों को अबीर की बौछारों से आहत करके, हम लोग उन्हें पकड़-पकड़कर अपनी ओर से भवन-स्तम्भों में बाँध देंगे और ऊपर से महिषी की तरह रंग-जल से मल-मलकर खूब नहवायेंगे ताकि सब का यौवनाहंकार रूपी मैल अच्छी तरह धुल जाय।

विदूषक : पता ही चल जायगा, कौन किसके मैल को धोता है। दादा !लड़ाई न करें, ये लोग खूब घी खाई हैं।

[विदूषक की बात पर ध्यान न देकर चारों भाई अबीर की वर्षा तथा पिचकारियों की मार से धूम मचाना प्रारम्भ कर दिये।]

[दूसरे पक्ष में श्री सिद्धिजी, श्री विदेहराज नन्दिनीजू की जय, श्री सुनैनानन्दवर्धिनीजू की जय, रसिकेश्वरी, सर्वेश्वरी, आश्रित-जन पालिनीजू की जय कहती हुई चित्रा को सम्बोधन कर कहती हैं....]

श्री सिद्धिजी : चित्रे ! श्री किशोरीजू की केवल कृपा के बल से अपने लोगों की ओर बढ़े आते हुये, राजकुमारों को रंग भरी पिचकारियों के प्रहार से ऐसा भगाओ कि वे पीछे हटकर अपने भूमि-भाग में चले जाँय।

चित्राजी : स्वामिनीजू ! श्री सियाजू का संकेत मुझे प्राप्त हो गया है। देखिये, देखिये.... ये भगे, ये भगे... !

[अबीर और रंग की वर्षा कर सखियों ने राजकुमारों को अपने हिस्से की भूमि में जाने के लिये बाध्य कर दिया। जय हो, जय हो, श्री किशोरीजू की जय हो, सब सखियाँ पुकारने लगीं।]

विदूषक : (कान लगाकर) दादा ! किसकी जय बड़े जोरों से बोली जा रही है, जरा कान लगाकर कृपया आप भी सुन लें। जंग बहादुर के जीते जी आप पीछे हट रहे हैं, बड़ी लज्जा का विषय है।

श्री रामजी : प्यारे लक्ष्मण ! पीछे हटकर श्वसुर पुर में बदनामी वहन करना वीरों के प्रतिकूल है, अतएव अबकी बार ऐसी अबीर की मार होनी चाहिये, जिससे अपनी विजय हो जाय और स्वपक्ष की जयनाद गगन में गूँजती हुई, प्रतिपक्ष को भयभीत कर भगाने में सक्षम हो जाय।

विदूषक : दादा !अबलाओं से हार ही जायेंगे तो क्या होगा ? प्राण तो बचेंगे। अरे, अरे ! आँख तो फूट गई। देखिये किन्चित अन्तराय की सहायता से उस चुनमुनिया सखी ने मेरे नवल-नेत्रों को देखकर विरोध से अबीर की मार मारी है।

श्री लक्ष्मणजी : (विदूषक को धमकाकर) प्रभो ! अभी अभी आपके देखते अपने अप्रतिम–पौरुष से सम्पूर्ण सखियों को बन्दी बनाये लेता हूँ।

विदूषक : वाहवा ! बड़े वीर के बेटे, वाहवा ! बहादुर आप अवश्य हैं, किन्तु यहाँ निशाचरों की सेना नहीं है, यहाँ तो नयन–बाणों की वर्षा करती हुई काम–सेना है। रंग भरी पिचकारी और अबीर भरी झोरी ऊपर से है। हम तो पीछे रहेंगे भैया ! क्योंकि अपने से इनकी एक–एक चोट असहनीय हो रही है।

श्री भरतजी : अरे भाई ! भय मत करो, तुम बड़े भीरु मालुम होते हो, रंग में रंग जाओगे और क्या होगा ? वीरोचित–वार्ता का विनियोग करो, कायरों जैसी बातें करना तुम्हारे स्वरूप के अनुरूप नहीं है।

विदूषक : (हँसकर) हमारे भैया भरतजी बड़े भोले–भाले साधु हैं। अरे बन्धु ! इनके नेत्र–बाणों से भले बच जाँय आप किन्तु निमिपुर की नवल नारियों के बीच में आकर नारी बनकर नृत्य करने से बचना महात्मा जी को भी मुश्किल है आज। अरारारा ! इन नारियों के समूह को देखकर हमारी नारी छूट रही है। रंग में भीजने भर की बात होती तो जंग बहादुर आगे–आगे यों (चाल दिखाकर) चलता परन्तु..हम पुरुष होकर स्त्री नहीं बनेंगे...हाँ आप...

श्री शत्रुघ्नजी : तुमको जंग में चलना होगा, जंग बहादुर अन्यथा तुम्हारे बिना विजय हम कहाँ पायेंगे ? देखो न, तुम्हारे आगे न होने से हम लागों को पीछे हटना पडा।

विदूषक : जंग बहादुर को होरी में अपने आपको झोंकना ही पड़ेगा क्या ? ए दादा ! हम पीछे से आप लोगों की रक्षा करें तो और अच्छा होगा, क्यों ? तो हम पीछे चलते हैं।

श्री शत्रुघ्नजी : नहीं, नहीं, जिसका जंग बहादुर नाम है, वह पीछे क्यों रहे ? तुम्हारी प्रतिष्ठा इसी में है अन्यथा नाम में धब्बा लगने की आशंका उत्पन्न हो जायगी।

विदूषक : तो क्या आगे जंग बहादुर की बलि देना ही आपने निश्चय किया है?

श्री रामजी : जंग बहादुर की बलि नहीं दी जायगी उलटे अलियों की भेंट की जायगी।

विदूषक : दादा ! दोनों बात तो एक ही हुई। हाय.... ! आज हमारे कान न रहेंगे। दही–दूध की खाई मिथिलानियों के मुक्कों की मार से मेरी पीठ फूलकर पर्वत की चोटी बन जायगी।

श्री रामजी : जंग बहादुर को भय न खाकर मार खानी पड़े तो कोई आपत्ति नहीं अन्यथा नाम में धब्बा लगेगा, क्यों ?

विदूषक : (स्वगत) मित्रता भी बुरी बला है, बीच में पीसा मैं जाऊँ, लोढ़ासिल एक के एक।सरहज और ननदोई भर–भर दोना रस पियेंगे, रंग–केलि का और मोटी–मोटी मिथिलानियों की मार खाने आगे–आगे मैं चलूँ। (प्रकट) दादा.... ! आप सर्वश्रेष्ठ हैं इसलिये आर्य को आगे रहना अनुचित न होगा, क्यों ?

श्री रामजी : जंग बहादुर ! सेनापति बीच में रहता है, आगे–आगे आप जैसे वीर ही जंग में जुटते हैं।

विदूषक : (मूँछ मुरेरकर अकड़कर अपने आप) अच्छा, जंग–बहादुर तुम्हीं आगे चलो और अपनी वीरता का परिचय देकर नारियों से नरवर की पराजय को बचाओ ।

[जंग बहादुर आगे बढ़कर रंग भरी पिचकारी और अबीर के द्वारा सखियों के शरीर को रंग से लथ-पथ करने की चेष्टा करता है।]

विदूषक : (चित्राजी के द्वारा पिचकारी का रंग आँख में पड़ने पर) ओ दादा.. ! आँख चली गई। चित्रा ने मेरी तस्वीर को काना कर दिया किन्तु जंग बहादुर जंग मे पीठ नहीं दिखायेगा। रघुवंशी वीर हूँ कि हँसी ठट्ठा।

श्री सिद्धिजी : (रंग वर्षाते देखकर) चित्रे ! कई सखियों के साथ रंग-अबीर की वर्षा से विह्वल बनाकर इस श्याम सुन्दर के सखा को बन्दी बना लो और अपने दल के खम्भे में बाँध दो ताकि यह यहीं से अपने दादा की दशा को देखता रहे।

चित्राजी : हाँ हाँ...इस खूसड़ के खुसड़ाई से केलि-कला के कौशल्य का दर्शन दोनों दलों में अवरुद्ध है अतः आपकी आज्ञा का अनुसरण अविलम्ब हो रहा है।

[कई सखियाँ अबीर की अंधेरी में से विदूषक को पकड़कर अपनी ओर के स्तम्भ में बंधन से बाँध देती हैं।]

विदूषक : अरे दादा..... ! जंग बहादुर की बहादुरी आज असमय में सोने चली गई है। सखियों ने मुझे मुक्के मार-मारकर अपनी जय बोलाने में विवश कर दिया है। अब मैं खम्भे से बँधा हूँ, जल्दी से छुड़ाओ।

श्री रामजी : अच्छा जंग बहादुर ! तब तक तुम आराम से द्वन्द्व-युद्ध बँधे-बँधे देखते रहो, जब तक तुम्हें मैं छुड़ा न सकूँ।

विदूषक : (स्वगत) कुसमय में कौन किसका होता है। देखो, दादा ने भी मेरी आर्त पुकार की अवहेलना कर दी हैं। खैर, जंगबहादुर अपने बाहु-बल से बँधा है तो बुद्धि-बल से छूट सकता है। कुछ नहीं बनेगा तो चित्राजी के पैरों में पड़कर गिड़गिड़ाता हुआ अपने को मुक्त कर लूँगा।

चित्राजी : चिल्लाते क्यों हो, सखाजी ? अब छूटने की नहीं है, घर की टहल कराकर तुम्हारे जीने का उपाय करती रहेंगी। शोर करोगे तो सभी सखियों के मुक्के खाने पड़ेंगे।

विदूषक : हाय... ! मार डारेंगी आज ये। अब अधिक नहीं बोलूँगा, अगर बोलूँगा तो इन्हीं के पक्ष की बात ताकि दया करके छोड़ दें।

श्री रामजी : लक्ष्मण ! ऐसे अबीर की मारा मारी मचे कि हम लोग शीघ्र सखियों से विजय प्राप्त कर सकें। साधारण में इन्हें हराना लोहे के चने चबाना है क्योंकि सिद्धिजी समस्त सात्विक शक्तियों से समन्वित होकर समर-भूमि में समुपस्थित हैं।

श्री लक्ष्मणजी : प्रभो । आपका सत्य संकल्प ही सर्व समर्थ है। सेवक को तत्परता से होरी-समर में संलग्न हुआ समझें, आप !

[चारों भाई भर-भर पिचकारियाँ चक्राकार हो बडे वेग से चलाते हुये अबीर की अत्यन्त वर्षा कर रहे हैं, अलियों पर, और इधर सखियों का समाज भी दूलह-दल पर रंग-अबीर की वर्षा करके उत्साह से होरी-समर पर उतारू है। दोनो दलों में मारा मार मचाकर जय घोष हो रहा है। विविध प्रकार के वाद्य

बज रहे हैं। होरी राग के गीत गाये जा रहे हैं। आकाश से जय शब्द और नगाड़े के नाद के साथ रंग गुलाब, इत्र और सुरभित सुमनों की वर्षा हो रही है। अप्सरायें बसन्त राग में नृत्य गान कर रही हैं। अत्यन्त आकर्षक परमानन्द प्रदान करने वाला हरिद्रोत्सव हो रहा है।]

पद : अतिशय अनन्द अनुभव में आव, खेलत श्रीराम लै अनुज धाव ।
सारी सरहज सिय की समाज, सोहहिं होरी क्रीड़न में आज,
बाजत डफ डमरू अरू मृदंग, वीणा वेणु बुल बुल तरंग,
मंजीर झाँझ झालरि झँकार, सहनाई सारंगी सितार,
नूपुर रव रहेउ छाय चारों ओर, नृत्यहिं गावहिं अलि ह्वै विभोर
कर कमलनि पिचकारी सुसोह, भरि भरि मारत मन को विमोह
एक एकन मुख मसलहिं गुलाल, वर्षि अबीरहिं कर दिय बिहाल
दोउ दल मारा मारहिं मचाय, महि–नभ कीन्हे अरुण अरुण भाय
सूझैं नहिं कोउ को कर पसार, दशहूँ दिशि भयो अति अँधियार
रामहि गहि सखि बनिता बनाय, विधु–मुख निरखहिं नयना नचाय
वर्षि सुमन सुर जय करत शोर, वर्षत अबीर अरगजा अथोर
हर्षण आनँद आनँद अनूप, छायो सिद्धि सदनन रस स्वरूप

श्री सिद्धिजी : चित्रे ! रंग–मूर्ति रसिकेश्वर जू की केलि–कला का कौशल्य महान मधुर और मन का मंथन करने वाला है। देखो तो सही करोडों कामदेव की छवि को छीनते हुये कितने प्रवेग से पिचकारी चला रहे हैं। अहा... ! इनके अबीर की मार से हम सब अबलाओं को अपनी हार माननी ही पड़ेगी क्या ?

चित्राजी : कला कोविदाजू ! आपका कथन सत्य से संश्लिष्ट है। अहो ! हृदय–हरण रघुनन्दन जू में कैसा वैचित्र्य व वैलक्षण्य है। होरी–समर में सरोष सम्प्रवेग गति का आश्रय स्वीकार करने पर भी इनके चन्द्रानन में विकृति की मेचकता का दर्शन नहीं हो रहा है। प्यारे जू का यह वैशिष्ट्र्य विपक्षियों को वश में होने के लिये विवश किये देता है। मुखाम्भोज की मंदस्मिति, चुटीली–चितचोरनी–चितवनि के साथ हम सब सखियों का सर्वस्व अपहरण करती हुई, अपने आधीन किये बिना न रहेगी क्या ?

श्री सिद्धिजी : अहा......! इनके पीत–वस्त्रों की फहरान तथा कारी–कारी–अलकावलियों को छूट–छूटकर मुख की ओर आते हुये जानकर कर–कमलों द्वारा प्रियतमजू का रोकना मेरे नयनों को निर्निमेष कर रहा है। क्या करूँ ? रंग–युद्ध में अपनी प्यारीजू की जीत न हो पायेगी क्या ? रंग वर्षा केबाहुल्य से।

श्री किशोरीजी : भाभीजी ! रूप–दाक्षिण्य–सम्पन्नता के जल से भरी अगाध–सरिता में कूदकर अपने अस्तित्व को मत खोइये। धैर्य का अवलम्बन लेकर अबाध–गति से अपने विपक्षियों के ऊपर अबीर वर्षाती हुई सखियाँ अबीर की अंधेरी में पर–दल में प्रवेश कर राजकुमारों को पकड़ लायें और अपने दल में उन्हें कुमार से कुमारी बनाकर नचायें तभी निमिकुल की नारियों के अनुरूप होगा अन्यथा गुमानियों का गुमान शिखर पर चढ़ता ही जायगा। देखिये न, दम घुट रहा है उधर की अबीर–वृष्टि युक्त पिचकारियों की मार से।

श्री सिद्धिजी : श्री लाडिली जू ! विजय श्री तो अपनी विदेह–राज–नन्दिनी जू को ही वरण करेगी क्योंकि आपकी इच्छा–पूर्ति में कोई भी विघ्नकारी परिस्थिति विरोध और विक्षेप नहीं उत्पन्न कर सकती। आपकी अघटन–घटना–पटीयसी विरुदावली मैथिल सीमन्तिनियों की सीमा का उलंघन इन्हें कदापि न करने देगी। क्या करूँ ? किशोरीजू ! श्याम सुन्दर के सुकुमार–सुकोमल अङ्गों का सौन्दर्य–सौकुमार्य और माधुर्य रूपी मक्खन कहीं अबीर कणों से किंचित किरकिरा न हो जाय, इसी भय से भयभीत होकर मेरे कर कठोरता का प्रयोग करने के लिये अब तक आगे नही बढे।

श्री किशोरीजू : मेरा मन तो आप और आपके अतिथि का द्वन्द्व–युद्ध कलात्मक कौशल्य के साथ देखना चाहता है, भाभी जी !

श्री सिद्धिजी : चित्रे ! तुम ऐसा प्रयत्न करना कि मेरे हाथ अबीर और भरी पिचकारी से खाली न रहें। ध्यान रहे, ढीले पड़ते ही श्री रामजी को, फेंटे का छोर पकड़कर अपने दल में अवश्य लाकर ललीजू की कामना–पूर्ति करनी है।

[श्री सिद्धिजी अपनी लाडिलीजू की रुचि जानकर श्री नव दूर्वादल तन श्याम दूलह सरकार से रंग–युद्ध करने लगीं। दोनों ओर से पिचकारियों की मार और अबीर की घनघोर वर्षा हो रही है। आकाश से सुरगण पुष्प–वृष्टि करके दुंदुभि स्वर के साथ जय हो, जय हो, कह रहे हैं। पृथ्वी और व्योम से रंग–अबीर की वर्षा के कारण रंग की सरिता सी बह चली। वर्तमान स्वर्णिम–समय का रंगाभिषिक्त रक्तिम दृश्य हृदय के हर्ष को उद्दीप्त कर रहा है। सुअवसर देखकर चित्राजी ने कुछ सखियों के साथ, श्रीराम दल में प्रवेश कर श्याम सुन्दर का फेंटा पकड़कर उन्हें अपने दल में बलात् लाकर सिद्धिजी के सामने उपस्थित कर दिया।

श्री रामजी : चित्राजी ! आप मुझे छोड़ दें। मेरी पराजय आप देख सकेंगी क्या? आज आपका अप्रतिम स्नेह अपने प्रति मुझे क्यों नहीं दृष्टिगोचर हो रहा है। आपको दया नहीं आती क्या ? छोड़ देंगी तो मैं बड़ा उपकार मानूँगा।

चित्राजी : न, लाल साहब, हाथ जोरो चाहे जो करो, मैं पकड़कर आपको छोड़ने वाली नहीं हूँ। कमर में बल हो तो छुड़ाकर आप भले चले जाँय। आप श्री के प्रति मेरे हृदय के अमल–अनुराग ने ही मुझे श्री किशोरी जी के समीप आपको उपस्थित करने की प्रेरणा दी है। दया न होती तो दयालुनी का दर्शन असम्भव था, आपको !

विदूषक : अरे, अरे ! दादा की तो दुर्दशा हो गई। हाय ! आँखों से देखा नहीं जा रहा है, क्या करूँ? अगर खम्भ में बँधा न होता तो जंग बहादुर जान लड़ाकर आज अपने दादा की सहायता सम्प्रवेग एवं शौर्य के साथ करता और इन अलियों की कारी–कारी अलकावलियों को लाल–लाल कर देता। फिर भी देखो दादा घबड़ाना नहीं। हमारे खम्भे के पास बँध जाने से हम समेत आप दो हो जायेंगे।

श्री सिद्धिजी : (श्री राम जी केकपोलों को अपने कर–कमल से दबाकर चिबुक स्पर्श करती हुई...) क्यों... ? अवध छैल की छैलानी, कलाधिप की कला–कुशलता और वीर–बाँकुरे की वीरता कहाँ चली गई ? बहुत गाल बजा रहे थे, अब गुम–सुम होकर चित्रा से बड़ी अनुनय–विनय कर भागने की सोच रहे हो।

श्री रामजी : नहीं, नहीं कुँअर वल्लभे ! मेरे पास में सब कुछ है किन्तु आपको देखकर उन्हें भूल गया हूँ। न जाने चित्राजी में वही मेरी शक्ति सम्प्रवेश कर मुझे अकल और अकर्ता के रूप में सबको दर्शन कराना चाहती है क्या ?

श्री सिद्धिजी : चलिये, चलिये.... लजीले नयनों की मटकान एवं मधुरिम मुख की मन्द मुसकान से संयुक्त मीठी-मीठी बनाई हुई बातों के बोलने से सखियों की समझदारी में उलट-पलट न होगा। लगे बड़े-बूढ़ों जैसे ज्ञान की गाथा झारने.... हमें आपको नारी बनाना है नारी , समझ गये न ?

चित्राजी : सुन्दरी को सुन्दर ढंग से सजाने के लिये बहुमूल्य वस्त्राभूषण आ गये हैं, साथ में सौभाग्यालंकार भी हैं।

[श्री रामजी को स्त्री-वेष से विभूषित कर "श्याम-सखी" नामकरण कर दिया गया तत्पश्चात् सखियाँ रामजी को हाथ पकड़कर नचाने लगीं।]

विदूषक : अरे दादा ! आपने अपने कुल की तो नाक कटा ली। मैं ही भला ठहरा, बँधा तो बँधा किन्तु नारी बनकर नाचा तो नहीं ! खैर ठीक है दादा। जो हुआ सो हुआ, नृत्य-कला के पंडित तो हो जायेंगे। राजकुमारों को सर्व कलाविद होना चाहिये।

श्री भरतजी : प्यारे लक्ष्मण ! अब हम लोगों को शौर्य-सृष्टि के चरमोत्कर्ष के साथ अतोलात्मक अबीर इन वीर-मानिनी ललनाओं पर वर्षा कर निबिड़तम का दृश्य उपस्थित कर देना चाहिये, और उस गहन अंधेरी में प्रवेश कर आर्य नन्दनजू को निमिपुर-निवासिनी नारियों के बंधन से मुक्त कर, अपने समाज में वापस लाना चाहिये। ठीक है न ?

श्री लक्ष्मण जी : अरे भैया ! मुझे भाने वाली बात आपने कही है, आपकी आज्ञा शिरोधार्य है। अभी-अभी अबीर-वर्षा के बाहुल्य से विदेह-वंश की बधुओं और बालिकाओं को व्याकुलता से ओत-प्रोत कर बात की बात में बड़े भैया को उनके चंगुल से छुड़ा लायेंगे।

श्री शत्रुघ्नजी : रघुवंश-विभूषण को तो लायेंगे ही। साथ ही सिद्धि कुँअरि और उनकी बड़ी चपल, चतुरा चित्राजी को भी पकड़कर अपने समाज में लाकर रंग से लथ-पथ कर देंगे तथा अबीर की मार से आहत कर हारी-हारी बुलावायेंगे तभी तो उत्तर का सादृश्य होगा, भैया ?

[तीनों भाइयों ने आवेश में आकर बड़े वेग से अबीर की वर्षा करते हुये रंग भरी पिचकारियों की मार से सखियों के दल को तितर-बितर कर दिया और स्वयं उनके दल में प्रविष्ट होकर श्रीरामजी को छुड़ाने के लिये प्रयत्नशील हो गये।]

श्री किशोरीजी : जिनके सर्वभावों का समन्वय अपने सम्माननीय श्रेष्ठ भ्राता में सर्वदा सन्निहित रहता है, उन कुमार त्रय को बल पूर्वक पकड़कर स्त्री बनाने में आप असावधान न रहेंगी, भाभीजी ! क्योंकि अनुजों को अपना अनुगमन करते देखकर बड़े भ्राता को बड़ी प्रसन्नता होती है और तत् सुख से उन्हें भी सुखानुभूति होती है।

श्री सिद्धिजी : लाड़िलीजू ! सजगता के साथ जीव की जीवनी जानकीजू की कामना-पूर्ति के लिये उक्त व्यापार में मैं संलग्न हूँ । भाग्य से ही सम्प्रति रामानुजों का प्रवेश आपके दल में दृष्टिगोचर हो रहा है।

चित्राजी : अभी–अभी मूर्ति–त्रयी को श्याम सखी जू की सहचरी बनाकर आपके सामने नृत्य कराऊँगी, किशोरीजू ! आपकी विजय आपकी इच्छा के आधीन है, यह अपना महाविश्वास है। विश्व–वन्द्या विदेहराजनन्दिनीजू की जय हो, सदा जय हो।

विदूषक : अरे छोटे दादा ! बड़े दादा की देवरानी बनना पड़े, तो कोई लज्जा की बात नहीं। श्याम सखी के रूप में श्याम सुन्दर से भेंट तो हो जायेगी। चित्राजी का अचूक निशाना अबकी बार आप वीर बहादुरों पर ही है। जंग बहादुर ने रोका था कि लड़ाई मत करो किन्तु गरीब की कौन सुनता है। हमारी अवज्ञा और अपमान करने से ही यह बुरी बला शिर पर आन पड़ी है।

[दोनों ओर की रंग अबीर की वर्षा से दोनों दल शिथिलता का अनुभव करते हुये भी धर–पकड़ छीना–झपटी में तल्लीन हैं। श्री सिद्धिजी के संकेत से सखियों समेत चित्राजी ने तीनों कुमारों को पकड़कर स्त्री–वेष–भूषा से युक्त करके मंडल बनाकर चारों भाइयों से नृत्य कराने लगीं।]

विदूषक : अहा.... ! दादा से खूब अच्छा नृत्य करते बनने लगा है। नारी की पोशाक, तदनुसार भाव–भंगिमा भी चित्त को चंचल बनाने वाली ही है, अगर कहीं सचमुच में लाल साहब ललना होते तो अपने भ्रू–विलास से जगत को क्या से क्या कर देते। कितनों के गले कट जाते, कितनों का सर्वस्व लुट जाता और कितने ही मार की मार से मारे–मारे फिरते। वाहवा ! खूब अच्छे लग रहे हैं दादा ! खूब अच्छे !

चित्राजी : जंग बहादुर ! क्या इन चारों नायिकाओं को पहचानते हो तुम ? ये सब हमारी श्री किशोरीजू की भाभी हैं, भाभी।

विदूषक : सखीजी ! आप से सामने–सामने बात करने में मुझे डर लग रहा है। क्या बोलूँ ? कहीं आपकी भृकुटी चढ़ गई तो मुझे भी किसी की मेहरारू बनना पड़ेगा। इससे तो सबसे भली चुप ! हाथ जोड़ता हूँ, पायन पड़ता हूँ, आपकी कृपा की भिक्षा चाहता हूँ ।

श्री लक्ष्मणजी : (स्त्री वेष से) क्यों रे कायर जंग बहादुर ! तू भी मिथिलानियों की ओर हो गया है, जो इनसे डरता है ?

विदूषक : दादा ! आप इनसे नहीं डरते हैं, इसी का परिणाम यह है कि नारी बनकर छमक–छमक, छन–छन–छनानना करते हुये नृत्य कर रहे हैं जैसे नटिनी के भय से बन्दर। बाबा...हम तो डर रहे हैं, सौ बार डरेंगे, हमारी कुशल इसी में है।

श्री शत्रुघ्नजी : छूटने पर तुम्हारी खूब पिटाई करेंगे। जंग बहादुर !

विदूषक : ए दादा ! तुम्हारे पायन पड़ूँ, मत मारना। दोनों तरफ की मार से पिसकर मैं आटा बन जाऊँगा। मैं आप चारों की बड़ी बड़ाई करूँगा । ससमाज चक्रवर्ती जी तथा वशिष्ठ जी व विश्वामित्र जी के सामने कहूँगा कि मेरे चारों दादा नृत्यकला के विशेषज्ञ हो गये हैं। श्वसुरालय के सिद्धि–सदन का प्राङ्गण इनका विशिष्ट विद्यालय था, वहाँ सिद्धि कुँअरिजी के कुलपतित्व में सखियों से स्त्री बनाये जाकर आचार्य का अनुवर्तन करते करते गांधर्व–विद्या में भुवन श्रेष्ठ हो गये हैं, अधिक क्या कहें, नर्तन–कला में रम्भादि अप्सरायें इनके आगे कुछ नहीं हैं, अतएव आप लोगों से इन्हें कुछ अवश्य मिलना चाहिये।

चित्राजी : प्यारे कुमार ! वार्तालाप करने से उचित ताल मात्रा में हानि हो जाती है, इससे चित्त-निरोध कर नृत्य करें ताकि, श्री किशोरीजू प्रसन्न होकर अवकाश दे दें आपको।

श्री रामजी : देवि ! आपके अधीन हूँ, इस समय जैसा नाच नचाओगी नाचना ही पड़ेगा, कभी हमारी भी बारी आयेगी ही।

श्री किशोरीजी : भाभीजी ! अपने अतिथियों को नृत्य करने से अब अवकाश दे दें, पुनः समय पर अपनी कला-कुशलता से आपकी सेवा करेंगे ही।

श्री सिद्धिजी : (किशोरीजू के रुख को देखकर) लाड़िले लाल साहब ! लीजिये....कामिनी के वेष से आपको मुक्त किया जाता है किन्तु किशोरीजू की जय बोल दीजिये तब।

चारों भाई : (एक साथ) श्री विदेहराज नन्दिनी जू की जय हो, जय हो, जय हो।

[चारों कुमार अपने दल में आकर पुनः होरी समर कर सखियों के मन को प्रसन्न करते हैं। सखियों ने भी रंग-केलि के द्वारा रामजी को रिझाने में अपने कला पूर्ण उत्साह में कमी नहीं होने दिया।]

श्री सिद्धिजी : मेरे प्यारे रघुनन्दनजू ! समय बहुत हो गया है, परिश्रम भी आपको आज कम नहीं करना पड़ा है। अतएव अब स्नान होना चाहिये।ठीक है न ।

श्री रामजी : राजकुमारीजू ! आपके हृदय की इच्छा ही मेरी इच्छा है, अब जैसी रुचि आपकी हो वैसा करें, मुझे इसी में प्रसन्नता है, समय का अतिक्रमण हो रहा है, यह विचार आपका अनुमोदनीय है।

[केलि को विराम देकर रँग-सरोवर में स्नान करने की तैयारी होती है।]

विदूषक : चित्राजी ! आपके पाँयन पड़ूँ, मुझको भी छोड़ दें ताकि दादा की सेवा के लिये समय पर पहुँच जाऊँ। हाय... ! इस रंग-यज्ञ का पशु होकर मुझे कब से बँधे हो गया। दया तो कीजिये।

चित्राजी : अच्छा जंग बहादुर। जिसकी जीत हुई, उसकी जय बोलो तो छोड़ दें तुम्हें।

विदूषक : रंग-जंग में जीतने वाली जनक-नन्दिनीजू की जय हो, जय हो, जय हो। ए सखी जी, रामजी की भी जय बोल दें क्या ? अन्यथा शत्रुघ्न लालजी जंग बहादुर की खबर लातों से लेंगे।

चित्राजी : हारे रामजी की जय हो, कहो।

विदूषक : (धीरे से हारे कहकर) रामजी की जय हो; जय हो, जय हो।

[चित्राजी विदूषक को मुक्त कर देती हैं]

श्री सिद्धिजी : चित्राजी, सिंहासन में रंग-बिहारी-बिहारिणीजू को पधरवाइये।

चित्राजी : जो आज्ञा हुई, उसका पालन अविलम्ब कर रही हूँ, स्वामिनीजू।

[श्री नव दूलह-दुलहिन श्री सीतारामजी महाराज सिंहासन में पधार जाते हैं। सखियाँ छत्र, चमर, विंजनादि साज लेकर खड़ी हो जाती हैं। श्री सिद्धि कुँअरिजी नृत्य-गान-वाद्य के साथ आरती करने लगती हैं उस समय आनन्द पराकाष्ठा में पहुँचकर सबको विभोर बना देता है।]

श्री सिद्धिजी : (मंगलानुशासन करके) प्राण प्यारे चारो ननदोइयों से मेरी प्रार्थना है कि सरोवर में चलकर जल–केलि के साथ स्नान किया जाय।

श्री रामजी : अपनी सुख–संविधायिनी सरहज की सम्मति मुझे सहर्ष स्वीकार है। लीजिये हम अभी चल दिये।

[युगल समाज का रंग–सरोवर की ओर प्रस्थान]

पटाक्षेप

....

त्रयस्त्रिंशः दृश्यः ३३

[सानुज श्रीराम जी महाराज मज्जन, अशन और शयन से अवकाश पाकर कोहवर कक्ष में सिंहासनासीन हैं – श्री सिद्धि कुँअरिजी गांधर्व कलानिधि को अपनी गांधर्वीय विद्या से रिझाकर स्वयं रीझी हुई, उनके समीप इस प्रकार बैठी हैं, मानों साक्षात प्रेम की प्रतिमा हैं।]

श्री सिद्धि जी का पद गायन : पावति दर्शन को दासी ।

सीतारमण रमें मन–मन्दिर, सिद्धिहिं लख न उदासी ।

अष्टयाम हिय अष्टकुँज में, लीला ललित प्रकाशी ।

श्याल–भाम अरु भाभी ननँद की, प्रीति अलौकिक भासी ।

हर्षण लखत अहर्निशि यद्यपि, अँखियाँ दर्शन प्यासी ।

श्री सिद्धिजी : (प्रेमाश्रु से युक्त गद्‌गद् वाणी में) प्यारे ! आपकी भगवती भास्वती कृपा से आपका यत्किंचित ज्ञान और प्रेम मुझे बाल्यावस्था से बीज रूप में प्राप्त था, वह यहाँ आने पर श्री किशोरी जू के कृपा–जल से वृद्धि–भाव को प्राप्त होता हुआ अंकुर से वृक्ष रूप में परिवर्तित हो गया और आपके आत्म–सखा श्री मिथिलेश कुमार जू की संगति–शाखा के सहारे इस स्थिति में प्राप्त हो गया है कि जिसके फल स्वरूप मुझे आपका दर्शन स्पर्श और अत्यन्त अपनत्व पूर्ण कैंकर्य प्राप्त हो गया। मदीयत्व और तदीयत्व भाव से भावित स्नेह की धारा में केलि करती हुई आप नवल दम्पति के सुख से सुखी रहना स्वस्वरूप समझ रही हूँ। अहा ! आपकी इस सरहज का कितना सौभाग्य ! धन्य है, कृपा–सिन्धु के कृपा–कटाक्ष को जिसमें सहज अपावनि अबला को भी अनिर्वचनीय परम पुरुषार्थ की प्राप्ति कराने का सामर्थ्य सन्निहित है। अहो ! साधना–कुटीर से सम्बन्धित सर्व क्षेत्रों के दार्शनिक ज्ञान का अवलम्बन मुझे नहीं लेना पड़ा, कृपा देवी के चमत्कार पूर्ण प्रभाव से पूर्णतम को पाने में किंचित देर न लगी। धन्य हो गई, कृतकृत्य हो गई, जीवन का परम लक्ष्य प्राप्त हो गया।

[श्री सिद्धिजी विकल होकर भूमि में गिर जाती हैं, श्रीरामजी स्पर्श करते हुये उन्हें प्रकृतिस्थ करते हैं।]

श्री रामजी : प्राण प्रियतमे, कुँअर बल्लभे ! कुँअर समेत आप अनादि काल से मेरी आत्मीय उसी प्रकार हैं, जैसे मेरी आत्मा। वस्तुतः आपके अप्रमेय प्रेम ही ने हमें बालक

पन से ही आप दम्पति के मिलने के लिये त्वरा उत्पन्न कर बिरही बना दिया था और उचित समय आने पर बिना आमंत्रण के मिथिला पाँव पयादे पहुँचने के लिये बाध्य कर दिया था। अहो ! प्रेमियों की प्रेम परवशता एवं तदधीनत्व ही मेरे जीवन की संजीवनी जड़ी है। अनुराग के अभाव में राम के रामत्व का दर्शन राम को भी अकिंचित रहता है।

श्री सिद्धिजी : मेरे मन मोहन ! मेरी आँखों के विषय बनते ही मुझे सर्व–विषयों से मुक्त कर दिया आपने। यह समस्त विरोधि–वर्ग–विरोधक आपके सौन्दर्य सार सुविग्रह एवं आपकी अकारण कृपा का कार्य है किन्तु इन नयनों में यह तीव्रतम कामना उद्भूत हो गई है कि इन्हें श्याम सुन्दर के सुविग्रह का कभी अदर्शन न हो, यदि संभव हो तो इनका फूट जाना अत्युत्तम होगा क्योंकि आपको देखकर अन्य को न देखने का व्रत इन्होंने ले लिया है।

(वियुक्त होने की कल्पना करते ही श्री सिद्धि कुँअरिजी वैचित्र्य प्रेम की स्थिति में आरूढ़ हो गईं। मेरे प्यारे श्याम सुन्दर कहाँ गये। हे सीता वल्लभ! अपनी सरहज सिद्धि का परित्याग इस प्रकार आप को नहीं करना चाहिये। इत्यादि इत्यादि प्रलाप करने लगीं।)

श्री रामजी : (सिद्धिजी के शिर को अंक में रखकर स्पर्श करते हुये साश्रु) हे प्यारी राजकुमारीजू ! आपका विलक्षण प्रेम मेरे संयोग में भी आपको वियोगानुभूति करा रहा है। इस वैचित्र्यीय प्रेमावस्था को देख–देखकर मेरा हृदय उसी प्रकार द्रवीभूत हो गया है जैसे अग्नि की आँच से मोम। अस्तु, आप प्रकृतिस्थ हों, नेत्र खोल कर देखें तो सही, मैं आपके सम्मुख अत्यन्त समीप देश मे बैठा हूँ।

(कह कर चेतनता लाने का उपचार करते हैं।)

श्री सिद्धिजी : (प्रकृतिस्थ होकर) हे रसिक शिरोमणि रघुनन्दनजू ! यह सब आपके स्वरूप–वैभव केवैलक्षण्य तथा गुण–वैभव के औदार्य का अप्रतिम जादू है अन्यथा इस जड़ात्मा में प्रेम का प्रसार एवं प्रचार कहाँ ? आप ही निज जन के हृदय को स्पर्श कर प्रेम रूप में प्रकाशित होते हैं, प्रियतम ! आपकी कृपा से शिला में पुष्पित कल्पलता का दर्शन सबको सहज ही सुलभ हो सकता है, इसके विपरीत आपकी इच्छा के बिना सुरतरु में भी सुरभित सुमन नहीं खिल सकते।

श्री रामजी : हे लक्ष्मीनिधि–वल्लभे ! आपका कहना आपके अनुकूल है किन्तु यहाँ ऐश्वर्य प्रदर्शन की वार्ता मुझे रुचिकर नहीं लगती। मिथिला मही में बसकर हमें माधुर्य–महोदधि में ही गोते लगाना अच्छा लगता है अतएव आपके हृदय–प्रांगण में बहने वाली प्रेम पयस्विनी का मैं भोक्ता हूँ और वह स्नेह–प्रवाह मेरा परम भोग्य है।

श्री सिद्धिजी : प्यारे प्रेमी के चित्त में प्रेमास्पद ही सर्वस्व और सर्व शक्तिमान होता है उसके अतिरिक्त अन्य कोई वेदांत सिद्धांतब्रह्म नहीं होता । इसलिये चित्त की प्रेरणा से कभी–कभी करणों को तदनुसार ऐश्वर्यात्मक क्रिया भी करनी पड़ती है। हाँ, आपके इस कथन का अत्यन्त आदर करती हूँ कि स्नेही के ऐश्वर्य–ज्ञान का पर्वत, प्रावण्य की प्रबलता से माधुर्य महोदधि में ही डूबा रहता है, अपवाद रूप में भले कभी–कभी उसके शिखर का दर्शन हो जाय।

श्री रामजी : हे कुँअर कान्ते ! आपके प्रेम की परिमिति नहीं है, हमारी सरहज जी का नव–नव अनुराग परम विशुद्ध एवं ज्ञान की परिपाकावस्था का परिणाम है। यह

दिव्य दशा किसी बड़भागी व्यक्ति विशेष को ही वरण कर प्रकाशित होती है। प्रिये ! आपके निर्मल स्नेह ने मुझे अपना नहीं रहने दिया अतएव आप अपने आधीन समझकर प्रेमात्र से पोषण करती हुई, प्रेमास्पद से स्वयं का परम प्रयोजन सिद्ध करती रहें, यही मात्र अभिलाषा है।

श्री सिद्धिजी : मेरे ननदोई अपनी सरहज और श्याल के नयनों से ओझल न हों, आप श्री के सुख को सुख समझते हुए, आप ही की इच्छा में हम दोनों की इच्छा विलीन रहे, नवल दम्पति के मुखोल्लास के लिये हम दम्पति से आपके सब प्रकार के कैंकर्य कुशलता पूर्ण होते रहें। क्षण-क्षण, नव-नव विवर्धित रागानुगाभक्ति पराकाष्ठा के केन्द्र में किलोल किया करें, यही अपनी परम प्रयोजनीय प्रार्थना है।

श्री रामजी : रस प्रिये ! आप और कुँअर मुझे अपने प्रेम-पाश में बँधे हुए समझें, मैं भी आप दोनों के सुख को ही सुख समझता हुआ आपके प्रिय और हित साधन में संलग्न रहना अपना अभीष्ट समझता हूँ। मेरा मन-मीन अपने श्याल-सरहज के स्वरूप-सर से पृथक होने की व्यर्थ वार्ता को भी सहने में सक्षम नहीं है।

श्री सिद्धिजी : मेरे प्यारे ! मेरा मन अत्यन्त आर्तिपूर्ण आप श्री के चरण-कमलों की शरण में पड़ा हुआ, सर्वकाल उन्हीं की गुलामी करना चाहता है। अतएव प्रार्थना है कि हम दोनों की लगन किसी जन्म के किसी काल में न छूटे। जहाँ आप रहें, वहीं हम आपकी सरहज तथा हमारे पतिदेव आपके श्याले बनकर आपके लिये अपना अनुकूल कैंकर्य किया करें।

श्री रामजी : सौम्ये ! प्रेम के प्रबल प्रवाह में बहकर, मैं स्वयं आप श्री से सरहज का सहजानन्द संप्राप्त कर आपके संयोग सुख से अतृप्त हूँ अतएव जन्म-जन्म में यही चाहता हूँ कि आप मेरी सुख-संविधायिनी सरहज बनें तथा आपके पतिदेव जो मेरे प्राणप्रिय आत्म-सखा हैं, मुझे श्याल सुख का विस्तृत वितरण किया करें। आपके अभीष्ट पूर्ति में काल, कर्म, गुण, स्वभाव बाधक बनने की सामर्थ्य नहीं रख सकते क्योंकि इनका भक्षक परमात्मा आपका संरक्षक है।

श्री सिद्धिजी : हे श्याम सुन्दर ! कमल की कान्ति और सुन्दर सुगन्धित वपु वाली सुर-सुन्दरियाँ ही क्या ! हमारे समान सौभाग्य-शालिनी श्री लक्ष्मीजी भी नहीं हैं, जो श्री हरि के वक्षस्थल में सदा शयन करती रहती हैं, क्योंकि अपने प्यारे आर्यनन्दन ननदोईजू का परम प्यार प्रतिक्षण प्राप्त कर रही हूँ, मैं।

श्री रामजी : सुन्दरि !जैसे भ्रमर का भोग मकरन्द है, वह अपने भोग्य कमल-कोष का विसर्जन करके कष्ट का ही अनुभव करता है, उसी प्रकार मेरा भोग्य प्रेमियों का प्रेम है अस्तु आप जैसी प्रेम-मूर्ति का प्यार परित्याग कर अन्यत्र असह्य संताप का ही स्वागत करना पड़ेगा मुझे। सिद्धि कुँअरि जैसी सरहज और श्री लक्ष्मीनिधि जैसे श्याल का सुख ब्रह्मा, विष्णु, महेश को सुलभ नहीं तो अन्य देवों की कथा ही क्या ? इसलिये अपने भाग्य-वैभव की प्रशंसा करते हुये, मेरा मन-मृग आप दोनों के वपुष-विपिन में बिहरने लगता है।

श्री सिद्धिजी : प्यारे ! हम दोनों आपकी सहज स्वकीय नियत वस्तु हैं और आप वस्तुतः सच्चे स्वाभाविक वस्तुमान हैं, अतएव हमारा विनियोग अपनी रुचि के अनुसार

करने में आपका अधिकार वस्तुतः स्वरूपानुरूप है। चाहे हमारा अनुभव आसक्त होकर करें या अनासक्त बनकर; अपने अनुभवानन्द के लिये चाहें तो हमें अपने अनुरूप त्रिसाम्यता प्रदान करके प्रसन्न रहें या जडात्मक तत्व बनाकर। आप सर्व देश सर्वकाल स्वतन्त्र हैं।

श्री रामजी : प्यारी ! हमारे हृदय में प्रीति का निर्मल निर्माण आपकी श्रद्धा प्रीति और भावना के अनुरूप है, अतिरिक्त भावनाओं का उदय आपके समक्ष सर्वथा असंभव है। अतएव लोक-लाज और कुलकानि की रक्षा करते हुये, आपके तन, मन, बुद्धि और आत्मा से करण-कलेवर युक्त मेरी आत्मा किसी काल और किसी देश में कभी भी पृथक न होगी। प्रेम की प्रमाणता में उक्त वाक्यों को आप पर्याप्त समझें। कहाँ तक कहूँ ! आपके समान मुझे अपनी आनन्द वर्धिनी आत्मा भी प्यारी नहीं है।

श्री सिद्धिजी : हे आत्म-रमण ! आप आत्मकाम महापुरुष हैं फिर भी प्रेमियों के प्रेम प्राप्ति की अपेक्षा करते हैं, यह आपका प्रेममय स्वभाव अनुरागियों की उर स्थली को अत्यधिक स्नेह से संसिक्त कर देता है। एक आप ही को प्रीति-रीति का पूर्ण परिज्ञान और उसके निर्वाह की क्षमता सहज स्वभाव से संप्राप्त है। आप ऐसे वचन क्यों न कहें।

श्री रामजी : नयनाभिरामे ! मैंने असत्य संभाषण कभी नहीं किया अतएव आपको परम प्रतीति होनी चाहिये कि मेरे ननदोई के वचन सर्वथा सत्य हैं, हम उन्हें आत्माधिक प्यारी रही हैं, हैं और रहेंगी। प्रिये ! यदि मैं प्रेम का पुजारी और पारखी हूँ तो आप अप्रतिम प्रभापूर्ण प्रेम की प्रतिमा हैं इसलिये हमारा और आपका संशयहीन सहज सनातन सम्बन्ध है। यह संभव नहीं कि भक्ति-कमल किसी भक्त के हृदय-सरोवर में सुविकसित हो और भगवान रूपी भ्रमर उसकी ओर आकर्षित होकर उसके मकरन्द का पान न करें।

श्री सिद्धिजी : कमल-लोचन ! आपके जन्म-कर्म जिस प्रकार से परम दिव्य, उज्जवल, प्रकाशमय, अद्भुत, आनन्दमय, अमानुषेय, अनुपमेय और अलौकिक हैं, उसी प्रकार हमारी श्री किशोरीजू के जन्म-कर्म विशुद्ध-वैशिष्ट्य और विशद वैलक्षण्य से संयुक्त हैं अस्तु दोनों का संबंध सर्वलोकों को सुखावह निर्विवाद सर्व सम्मत से सिद्ध हुआ है। आप दोनों की प्राप्ति से मुझे कुछ पाना शेष नहीं रह गया। श्री के सुन्दर विकसित वदनाम्भोज का दर्शनानुभव कर अन्य महान से महान भोगों के भोगने की किंचित रुचि नहीं रह गई, आपके कैंकर्य को प्राप्त कर अतिरिक्त पुरुषार्थों के प्रति वमन-दर्शन के सदृश घृणा उत्पन्न हो गई है। आत्मा कृतज्ञता प्रकट करती हुई आपकी अनुगामिनी और अनुरागिनी बनकर अपना अस्तित्व रखना चाहती है किन्तु यह सब आपकी कृपा-कटाक्ष का परिणाम है, अन्यथा इस अपावन अज्ञ अबला को यह लोकोत्तर लाभ दुर्लभ ही नहीं अप्राप्त था जैसे मरुभूमि में देवतरु।

श्री रामजी : आर्ये ! आपका चित्र चञ्चरीक चारुतया श्री लक्ष्मीनिधिजी के कमनीय कमल-वपु में सतत सस्नेह विहार करता रहे, उनको हमसे भिन्न न समझें। मैं सत्य कहता हूँ कि मैं ही मिथिलेश कुमार हूँ और वे आपके प्राणपति ही दाशरथी राम हैं। हम दोनों एक आत्मा होकर रसास्वाद के लिये श्याल-भाम के रूप में दो देहों में दृष्टिगोचर हो रहे हैं अतएव उनके साथ अनन्य एकान्तिक स्नेह और एकान्तिक किया हुआ कैंकर्य हमको चरम सुख प्रदान करने वाला है क्योंकि कुँअर के रूप में हमारी आत्मा ही आपका अनुभव करने वाली है। आप सी बड़भागिनी आप श्री ही हैं, आपका वैशिष्ट्य एवं वैलक्षण्य आपका अत्युत्तम अलंकार है, जो देह संघात सहित आत्मा को अलंकृत करता है।

श्री सिद्धिजी : प्रियवर ! आपकी अनुकम्पा से अपनी अम्बा के द्वारा वधू-काल में दिया हुआ उत्तम उपदेश श्रवण के साथ ही बुद्धि में बैठकर पति और परमात्मा में अभेद बुद्धि उत्पन्न कराकर तदाचरण में बिना अहं के मुझे लगा दिया था, पश्चात प्राणनाथ के संग से आप और उनमें तत्वतः किंचित भेद न देखना मेरा सहज स्वभाव बन गया है अन्तर है तो केवल सम्बन्धानुसार पवित्रतम व्यवहार का। वह भी आपकी आनन्दमयी लीला की विधायनी लीलादेवी के दिये हुये पाठ के अनुसार इस जागतिक रंग-मंच पर पाठ करके प्रभु प्रसन्नता के लिये।

श्री रामजी : आत्मप्रिये ! परमार्थ स्वरूप परम तत्व के रिझाने के लिये आपकी आँखों से विनिस्सृत प्रेमाश्रु की एक बिन्दु ही पर्याप्त है। मेरे मन में मन मिलाने वाली मद्गत प्राणा कुँअर बल्लभा के प्रगल्भ स्नेह ने अत्यन्त आसक्ति सम्पन्न अपने उदारत्व से मुझ को अपना न रहने दिया। आत्मा एवं आत्म सम्बन्धी सभी वस्तुओं के समर्पण के पश्चात् भी चक्रवर्ती कुमार राम, श्रीधर-कुमारी का ऋणियाँ बना हुआ, उनकी रुचि और संकेत के अनुसार चलने में ही मनः प्रसाद को प्राप्त करता है।

श्री सिद्धिजी : माधुर्य-महोदधि की मधुरवाणी जगन्मोहिनी तो है ही, साथ ही संसृति चक्र के चक्कर से निवृत्ति कर परम परमार्थ स्वरूप प्रेम रस से ओत प्रोत कर देने वाली परमार्थ-प्रदासिद्ध औषधि है। मनमोहन ! मेरा मन सदा सीता वल्लभ की सेवा में संलग्न रहे, हृदय-कोष में प्रेमधन की परम प्रवृद्धि सर्व देश, सर्वकाल में सर्व भाँति बनी रहे। अन्य आशाओं की कलङ्कित कामना का काला बिन्दु अनुपम अनुराग के धौत वस्त्र में न पड़े, ऐसी शुभेच्छा से संयुक्त साधन-शून्य किंकरी, केवल आपके कृपा -प्रसाद से ही इष्ट-पूर्ति की इच्छा रखती है। अन्तर्यामी से अन्तर मन की वार्ता अप्रकट नहीं है किन्तु आर्ताधिकार के कारण उसे व्यक्त करने की धृष्टता दासी से बार-बार बन ही जाती है। क्षमा करेंगे मेरे सर्वस्व !

श्री रामजी : रसप्लुते ! आपकी भव्य-भावना साकार रूप में भूत, भविष्य और वर्तमान को अवछिन्न किये हुये है। हमारे सरहज का सुमनोरथ-हमारी हार्दिक-कामना के अनुरूप हमारे ही संकल्प का प्रतिबिम्ब है, जिसमें निस्संदेह आनन्द सिन्धु का समवगाहन सर्वदा संभाव्य है। प्रिये ! कोहवर-भवन में निवास करने का नियत समय व्यतीत हो चुका है, अतएव अब हमें श्रीमान् पिताजी के समीप जनवासा जाने की अनुमति आपसे मिल जानी चाहिये।

[सिद्धि कुँअरिजी जानकी जीवन के जनवासा जाने की कल्पना कर शिथिलता से स्मृति-शून्य हो गईं। श्री रामजी स्पर्श कर चेतना प्रदान करते हैं।]

श्री सिद्धिजी : प्यारे को पितृ-दर्शन का लोभ तथा कोहवर-वास की अवधि का अतिक्रमण जनवास जाने के लिये त्वरान्वित कर रहा है, यह भी जानती हूँ कि प्रियतम की रुचि रखना प्रेमी का सहज स्वरूप होता है किन्तु न जाने कैसे मन के मही में अधीरता का एक छत्र आधिपत्य स्थापित हो गया है। हाय... ! क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? हाय, हाय नेत्रों की ज्योति कहाँ, चली जा रही है ? अरे, अरे, प्राणों की व्याकुलता कूटस्थ को इस कुटीर में न रहने देगी क्या ?

[पुनः प्रेम मूर्छा से अचेत हो जाती हैं.....]

श्री रामजी : (सचेत करके) प्रेम विग्रहे ! सम्प्रति समीपस्थ सखियों के नेत्र का विषय बना हुआ भूखा मैं, आपके भाव की भिक्षा से संतृप्ति का अनुभव कर रहा हूँ, इसके विपरीत आप मुझे स्पर्श करती हुई भी वियोगाग्नि की ज्वाला से जल रही हैं। धैर्य धारण करें, मिथिला के मध्य में जनवासा भी तो आपका ही दूसरा भवन है, जहाँ से आना होता ही रहेगा, आप श्री के पास। क्या करूँ? जिस प्रकार कोहवर की कृत्य के लिये यहाँ पिताजी से पृथक होकर चार दिन निवास करना आवश्यक और अनिवार्य था, उसी प्रकार जनवासा की कृत्य के लिये वहाँ पहुँचना भी मेरा परम कर्तव्य है इसलिये प्रसन्नता पूर्ण शुभाशिर्वचनों के साथ शुभायसु प्रदान करें जिससे श्रीमान पिताजी के पारतन्त्र्य का रक्षण करते हुये, हम उनके मुख-कमल को विकसित कर सकें।

श्री सिद्धिजी : मेरे प्राणों के प्राण ! आपको यहाँ से प्रस्थान करने के लिये अनुमति पाना तो हमारे सास और स्वसुर देव की इच्छा पर निर्भर है। अतएव अपनी सासुजी के समीप आप सहित चलती हैं हम। नित्य के अनुसार आपका उनसे मिलने का समय भी हो गया है।

श्री रामजी : यह आपका सुझाव सर्वथा औचित्य के अनुकूल है, कुँअर बल्लभे! हमको श्री मन्महाराज मिथिलाधिप का आशीर्वाद और अनुशासन लेकर ही समय से पिताजी के सन्निकट पहुँचना चाहिये। चलें, अम्बाजी के पास।

[सिद्धिजी सहित सानुज श्रीरामभद्रजू का सुनैना अम्बा के समीप प्रस्थान]

पटाक्षेप

इति तृतीयः अङ्कः

....

अथ चतुर्थः अङ्कः

चतुस्त्रिंशः दृश्यः ३४

(सानुज श्रीरामभद्रजू अपने सास-श्वसुर की सम्मति से जनवासा पहुँचकर पितृ-सुख का संवर्धन करते हुये, सबके नेत्र-विषय बने हुये हैं। श्री चक्रवर्तीजी महाराज नित्य-नित्य अयोध्या जाने के लिये श्री विदेहराजजी से विदा का प्रस्ताव रखते हैं किन्तु उनके प्रेम-पाश से बँधकर मिथिला को छोड़ने में समर्थ नहीं हो रहे हैं। अन्त में श्री विश्वामित्रजी तथा श्री शतानन्दजी के कथनानुसार श्री कौशल नरेश को स्वपुर-प्रयाण करने के लिये श्री जनकजी की सम्मति प्राप्त हो गई। विदा की तैयारियाँ हो रही हैं। श्री किशोरीजी सहित रामजी के अदर्शन की कल्पना से समस्त पुरवासी विरह-वह्नि से संतप्त होने लगे। सबका मुख-मयंक भावी वियोग-राहु से ग्रस्त हो गया। श्री सिद्धिजी अपनी सखी-सहेलियों के साथ अपने सदन में श्री किशोरीजू एवं श्री रघुनन्दन जू की रूप-माधुरी तथा उनकी गुणावली का वर्णन करके वर्णनातीत आनन्द अनुभव कर रही हैं।)

[दासी का श्री सिद्धिजी के समीप कुँअर श्रीलक्ष्मीनिधिजी के आगमन का संदेश सुनाना।]

दासी : स्वामिनीजू की जय हो, जय हो।

[श्री सिद्धिजी को दंडवत प्रणाम करती है।]

श्री सिद्धिजी : कहो दासी क्या समाचार है ? तुम्हारी मुख–मुद्रा में पूर्व की भाँति प्रसन्नता का प्राकट्य न होने का क्या कारण है ?

दासी पद गाती है.....

पद : स्वामिनी प्राणनाथ तव आवत ।
बिनु विकसित मुख कमल कुँअर को, हाय ! शोभ नहिं पावत ।
कम्पित वदन चलत मग डगमग, नयन नीर टपकावत ।।
श्यामा श्याम आह भरि भाखत, सुनत सबहिं मुरझावत ।
कहन संदेश दौड़ि इत आई, खिन्न मना शिर नावत ।।

दासी : राम प्रिये ! श्री मिथिलेश कुमार अन्तःपुर में पधार रहे हैं, यही सन्देश स्वामिनीजू को देने आई हूँ, मैं। आपके प्राणनाथ का अविकसित–मुख–कमल ही एक मात्र मेरे हार्दिक हर्ष का अपहरण करने वाला प्रतीत होता है, अन्य कोई कारण नहीं।

श्री सिद्धिजी : क्या कह रही हो ? मेरे प्राणेश्वर का मुखाम्भोज मलीन हो गया है। अरे...अरे ! यह क्या श्रवण कर रही हूँ मैं। स्वप्न का दर्शन हो रहा है क्या ? नहीं, नहीं प्राणनाथ के शयन करने के बाद ही तो मैं रात्रि में सोती हूँ। यह तो दिन है न ? हाँ, हाँ दिन है। इन सब सखियों के साथ अभी–अभी अपने ननँद–ननदोई के माधुर्य–महोदधि में गोता लगा रही थी, इतने में ही यह सामने खडी हुई दासी, प्यारे की प्रसन्नता में न्यूनता आने की वार्ता बतलाई है न ? हाय, हाय मेरे महान पापों का परिणाम है, जो प्रियतम के मुखोल्लास में कमी है। हाय...! हृदय असहिष्णुता का अनुभव कर रहा है, अधीरता का आधिपत्य हो रहा है, व्याकुलता वृद्धि भाव को प्राप्त हो रही है। शरीर शिथिल हो रहा है और मैं...स्मृति शून्य सी हो रही हूँ...।

[कहकर कुँअर–बल्लभा पछाड़ खाकर आसन में गिर जाती हैं, सखियाँ उपचार के द्वारा सचेत करती हैं, इतने में ही मिथिलेश कुमार कक्ष में प्रवेश करते हैं। साश्रु नयना श्री सिद्धिजी श्री लक्ष्मीनिधिजी को प्रणाम करती हैं। प्रेममूर्ति कुँअर सात्विक भावों से भरे होने पर भी अपनी प्रियतमा को उठाकर हृदय से लगा लेते हैं। पुनः दम्पति बिलखते हुये आसनासीन हो जाते हैं। सखियाँ और दासियाँ भी उनके प्रलाप से प्रभावित हो रही हैं।]

श्री सिद्धिजी : (साश्रु) प्रेम–मूर्ति हमारे प्राण–प्रियतम् की मुख–पंकज श्री अचानक तुषार के आगमन से कुम्हलाई हुई सी क्यों हो गई है ? स्वामी के शरीर में विरह–वेदना के भावों का भरपूर प्रदर्शन मेरी आत्मा को अत्यन्त अधीर बना रहा है, प्यारे !

श्री लक्ष्मीनिधिजी : (साश्रु, गद्‌गद् वाणी से काँपते हुये) प्रियतमे ! तुम्हारा प्रियतम अपने प्राण–प्रीतम से वियुक्त होने जा रहा है। हाय ! हाय ! हमारे जीवन–सर्वस्व, जानकी–जान, जानकी के साथ जनकपुर से अवधपुर जाने की तैयारी कर रहे हैं। अग्रिम

दिवस उनके प्रस्थान के लिये पुरोहितों ने मंगलमय कहा है, दाऊजी की अनुमति भी प्राप्त हो गई है, चक्रवर्ती कौशल-नरेश को। प्रिये ! वियोग की दुःसह दावाग्नि से हाय... ! मेरा वपुष-विपिन धू-धू करके विदग्ध हो रहा है, प्रियतम श्री कौशल-किशोर तथा प्रियतरा किशोरी से वियुक्त होकर इस विदेह-पुरी में वास करना कैसे संभव हो सकता है। अरे, अरे ! हृदय को कोई करोये ले रहा है, चेतना भी साथ नहीं दे रही है, वाणी विराम ले रही है। हाय ! हाय ! कैसा-कैसा लग रहा है ! क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? किसे पुकारूँ? हा श्यामसुन्दर रघुनन्दन तुम्हारा श्याला तुम्हारे बिना अब मरा ! हा ! हा ! किशोरी तुम से वियुक्त तुम्हारे भैया का जीवन व्यर्थ है। हाय ! हाय ! अपने भाम-भगिनी के भावी वियोग से विदेह कुमार विदेहता का आलिङ्गन कर रहा है, तो वास्तविक विरह की व्यथा की कथा क्या से क्या करेगी ? हाय जीवन धन... !

[कहते हुये कुँअर श्री लक्ष्मीनिधिजी आसन में मूर्छित हो जाते हैं।]

श्री सिद्धिजी : (उपचार द्वारा कुँअर को सचेत करके, कम्पित-वदना साश्रु नयना...) प्राणधन के प्राण-प्रिय का प्रयाण होगा। हाय ! हाय ! जिसे नहीं चाहती थी, मैं, कर्णों को अप्रिय कर सम्वाद श्रवण करने का वह समय संप्राप्त हो गया। अरे, अरे ! हमारे ननँद-ननदोई के चले जाने पर मिथिलापुरी अमावस की अंधेरी रैन हो जायगी, प्रयत्न करने पर कोई भी प्रकाश, पुरी को प्रकाशित नहीं कर सकता। हाय... ! प्राणेश्वर के प्राणों को पीड़ा पहुँचाने वाली अरुचिकर-वार्ता को श्रवण कर किंकरी के प्राण-पखेरू शरीर के पिंजड़े से उड़ने के लिये व्याकुल से प्रतीत हो रहे हैं। हाय ! घन-दामिनी की द्युति को दमन करने वाले दम्पति का प्रयाण सभी सन्नरों व सन्नारियों को समान रूप से संतप्त कर उनके हृदय को हरा-भरा न रहने देगा। हाय !हाय ! मेरी क्या दशा हो रही है ? मैं कहाँ हूँ ? कहाँ जा रही हूँ ? और हाय ! क्या कर रही हूँ ? कोई तो समझा दे... !

[प्रेम की पूर्णता के कारण भावी-विरही वेदना ने सिद्धि कुँअरि को स्मृति हीन करके धरणी में धड़ाम से गिरा दिया। सखियाँ शीघ्र ही उपचार के द्वारा अपनी स्वामिनीजू को चैतन्य करने का प्रयास करने लगीं।]

श्री लक्ष्मीनिधिजी : (साश्रु) प्रेम-मूर्ते ! हमारे भाम-भगिनि संसार के सभी समाजों से समादृत हैं। अतिशयोक्ति नहीं, इनके समक्ष सम्पूर्ण स्थावर जगत भी जंगम जीवों की तरह श्रद्धालु बनकर श्रद्धा की पुष्पाञ्जली समर्पण करता है, जिस जड़ या चेतन पर चित चोर चतुर चूड़ामणि की दृष्टि पड़ जाती है, वह अपने को अर्धक्षण में अमृतमय परम पद का अनुभव करता हुआ पाता है। प्रिये ! जिसने रघुनन्दन के सौन्दर्य-सुधा-सागर में स्वतन्त्रता पूर्ण सम्प्रविष्ट होकर दर्शन, स्पर्शन, निमज्जन और पान का सम्यक् प्रकारेण आस्वाद लिया है, उसे उस आनन्द-सिन्धु से वियुक्त होने की कल्पना कितनी कटु और असहनीय प्रतीत होती है, हम लोग उसका आज अनुभव कर रहे हैं। भविष्य में वियोग की व्याधि न जाने कैसे-कैसे कठिन क्लेशों का अनुभव कराती हुई, किस से किस रूप में हमारा परिवर्तन कर देगी। हाय ! हृदय विदीर्ण-सा हुआ जा रहा है।

श्री सिद्धिजी : (साश्रु) प्यारे ! प्रेम-लक्षणा भक्ति-शास्त्र के प्रधान प्रवर्तक आचार्यों ने विरह-व्यथा के वर्णन में तज्जनित दशों-दशाओं का निरूपण किया है। अतएव यह प्रतीति हो रही है कि यदि हमारे हृदय में अपनी लाड़िली ननँद के प्रति विशुद्ध

प्रेम होगा तो निःसन्देह चिन्ता, जागरण, उद्वेग, कृशता, मलिनता, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, मोह और मरण की दशायें हमारा वरण करेंगी। प्रेमी का स्वरूप विरह-वह्नि में जलना और मरना ही है।

श्री लक्ष्मीनिधिजी : (साश्रु) आकुलेक्षणे ! यद्यपि यह भली-भाँति जानता हूँ कि किशोरीजू का कौशलपुर पदार्पण करना महान से महान माङ्गलिक कार्य है। "श्री रामजी तथा श्री सियाजू के दाम्पत्य-जीवन का सुर तरु अयोध्या में सम्प्रकाशित होकर पुष्पित हो एवं उसमें तदनुरूप सुमधुर फल लगें।" यह सुमधुर कामना सभी सुर-नर-मुनि समुदाय के मन में उनका मंगलानुशासन करते हुये प्रबल रूप से प्रादुर्भूत हो गई है, जो मिथिला के मंगल और आनन्द को अतिशयता के साथ संप्रवर्धित करने वाली है किन्तु वैयोगिक वार्ता का विसर्ग वाणी में एवं स्मरण चित्त में होते ही बरबस हृदय को क्रोई करोये जा रहा है, बुद्धि का वैमर्श विदूर होता चला जा रहा है, कोई मन मोहन मन का मंथन-सा कर रहा है, वाग विसर्गता विराम ले रही है, सात्विक भावों का ताँता लगा हुआ है, शरीर शिथिल हो रहा है और इन्द्रियाँ अपने-अपने व्यापार से अवकाश ले रही हैं। हा सीते ! हा श्याम सुन्दर रघुनन्दन !

[कहकर पुनः अचेत हो जाते हैं, सिद्धिजी सचेत करके कुँअर के हृदय से लगकर बिलखती हुई कहती हैं.....]

श्री सिद्धिजी : पराकाष्ठा को प्राप्त प्राणधन का प्रेम, प्रिय के वियोग से व्याकुलेक्षण बनाकर, विरह-व्याधि से व्यथित करने को आतुर हो रहा है। जीवन-धन के वियोग-व्यथा का दृश्य दूर रहा, कथा ही किङ्करी को किंकर्तव्य विमूढ़ बनाती हुई, स्मृति का अपहरण कर रही है क्या करूँ? विरह के चगुंल में न फँसने का कोई उपाय है क्या ? नहीं, नहीं कोई उपाय नहीं। विरह-वह्नि से बचने का साधन सोचना प्रेमी के स्वरूप के प्रतिकूल है। हा श्यामे हा श्याम सुन्दर।

[कहकर रुदन करने लगती हैं, कुँअर भी अपनी कान्ता का अनुसरण कर रहे हैं। सखियाँ समझा रही हैं। इसी बीच श्री मन्महाराज-नन्दिनीजू अपने बड़े भैया व भाभी की विरही-व्यथा की कथा को किसी से श्रवणकर, उनसे मिलने की त्वरा में प्रवेश करती हैं।]

श्री लक्ष्मीनिधिजी : (देखते ही आनन्द से विभोर होकर) अहा ! आई....आई मेरी लाड़िली। लोचनाभिरामे ! अपने भैया के प्रति अप्रतिम और अलौकिक आपके स्नेह ने मुझे आपका अत्यन्त अनुरागी बना दिया है, बिना अनुजा के देखे विलोचनों को विश्रान्ति का स्वप्न भी नहीं सूझता......

[प्रणाम करती हुई, श्री किशोरीजू को कुँअर अपने अङ्क में लेकर प्यार करते हुये आसनासीन हो जाते हैं। श्री किशोरीजी भैया के गले से लिपटी हुई, अश्रु-विमोचन के द्वारा भ्रातृ-पृष्ठ को सिंचित कर रही हैं। श्री लक्ष्मीनिधिजी भी नयनों के नीर से श्री किशोरी जू के पृष्ठ भाग को गीला कर रहे हैं। दोनों का प्रेम-प्रवाह फूट-फूटकर श्री सिद्धिजी को अपने में अस्त कर लिया है जानते ही श्री किशोरीजी उठकर भाभी के हृदय से लग जाती हैं, तत्क्षण दोनों के अपरिमित स्नेह ने दोनों को विभोर बनाकर आत्म-विस्मृत कर दिया।]

श्री लक्ष्मीनिधिजी : (स्वगत्) स्वर्णिम–बालुका–कणों से युक्त दो सरिताओं की दो धाराओं का संगम, समाज के सहित सिद्धि–सदन को सदा के लिये संलीन कर देगा क्या ? प्रेम–वारि प्रवाहिनी भव्य–नव्य नदियों का संग्रह और सेवन भी जीवन–ज्योति जगाने के लिये नितान्त आवश्यक है। अतएव इनका अवगाहन करने वाला व्यक्ति विशेष मैं, अपने अहं की सुरक्षा करने में कदापि समर्थ नहीं हो सकता। (प्रकट में...) चित्राजी ! आज अधीरता के आधीन हुआ, मैं अपने को सम्हालने में जब असमर्थ हो रहा हूँ, तब इन युगल–प्रेम–प्रतिमाओं को प्रकृतिस्थ करने में कैसे सक्षम हो सकता हूँ। अस्तु, आप उपचार के द्वारा इन दोनों राज किशोरियों को चेतना प्रदान करें।

चित्राजी : सौम्य ! आज का दिन वियोग का दिन है इसलिये प्रेम–पथ प्रगतिशीला ये प्रेम–मूर्तियाँ विरह की भावना करके तज्जनित अग्नि में अपने अहं को अग्निमय बनाकर वियोगिनी होती हुई, परम सिद्धि–स्वरूपा योगिनी बनी हुई हैं। इनकी त्रिपुटी का विलीनीकरण हो चुका है, स्मृति शून्य हो गई हैं। प्रेम–जगत के तथ्यों के प्रति यत्किंचित मुझे ज्ञान है, तदनुसार औपचारिक क्रिया के प्रयोग द्वारा इन्हें चेष्टित करने का प्रयत्न अविलम्ब करने जा रही हूँ। नाथ ! निरीक्षण करते रहेंगे। उपचार में कहीं मेरी असावधानी तथा अनधिकार चेष्टा ध्येय को ध्वंस न कर दे।

[चित्राजी ने बड़ी निपुणता से उपचार के द्वारा श्री सियाजू सहित सिद्धि जी को प्रकृतिस्थ कर दिया।]

श्री सिद्धिजी : श्री किशोरीजू ! आपकी अशेष करुणा की सरिता में स्नान कर महा मलीन भी मृदुल और स्वच्छ हो जाते हैं। आप अपने करुण बाहु–पाश में सभी को समेटे रहती हैं। आपकी दया–परिधि में कोई विशेष्य नही है, अनन्तानन्त अण्डों के सभी प्राणि–समुदाय आपके आत्मा–अंशुमाली की अपरिमित किरणें हैं, अतएव यह आपकी भाभी भी प्रकाश–स्वरूप आपकी अहैतुकी कृपा से आप श्री की परिचर्या करने की निपुणता संप्राप्त कर सकेगी, मन में परम प्रतीति है। विधि से यही विनय किया करती हूँ कि जब जहाँ मेरा जन्म हो, तब वहाँ आप मुझे ननँद के रूप में मिलें। मुझ अभागिनी की आँखें अब अपनी आत्मा की आत्मा का अदर्शन ही देखेंगी। हाय ! हाय ! भाभी, भाभी कहती हुई, हृदय से हृदय लगाकर मेरी प्राण–संजीवनी मुझसे अब कब मिलेंगी ?

[रो–रोकर श्री सिद्धिजी स्मृति शून्य हो गईं ....]

श्री किशोरीजी : (स्पर्श द्वारा सचेत करके) भाभीजी ! मैं अपनी कुछ नहीं, जो हूँ, आपकी हूँ। अपने अधीन नहीं, जहाँ भेज रही हैं, वहाँ जा रही हूँ किन्तु यह सब व्यापार आपके सुख के लिये है, अपने लिये नहीं। यहाँ रहना, अन्यत्र रहना, जाना और आना दोनों आपके उत्कर्ष के लिये है किन्तु है लीला मात्र। मेरा वास्तविक वास तो सिद्धि–सदन में ही सर्वदा रहा है, है और रहेगा। जानती हुई भी, आपके वियोग की कल्पना से उद्भूत व्याधि व्यथा ने भावी सुखों के संस्मरण जनित आनन्द के आलोक को अंधकार से आवृत्त कर दिया है। हाय ! अब मुझ चकोरी को भाभी के मुख–चन्द्र का चारुतम दर्शन कब सुलभ होगा।

[कहकर किशोरीजू अश्रु बहाती हुई अधीर हो जाती हैं।]

श्री लक्ष्मीनिधिजी : (किशोरीजू को अपने अंक में लेकर प्यार करते हुये) मेरी लाड़िली का उरस्थल प्रेम–सिन्धु से सर्वथा सराबोर है। मैं भली–भाँति जानता हूँ कि अपने

भैया और भाभी पर आपकी अत्यन्त अनुरक्ति है। शिशुपन से अब तक मेरे साथ अन्न ग्रहण किये बिना, आपको अतृप्ति का ही अनुभव करना पड़ा है। मेरा लाड़-प्यार पाने के लिये मैया और दाऊ जैसे उच्च स्नेह को पीछे करके, मेरे समीप रहने में ही आनन्द की अनुभूति करती थीं। अपने भैया के सुख को सुख समझने वाली सीते ! नयनों का विषय बनी हुई, आप अब मिथिला में अधिक दिवस न रह सकेंगी यद्यपि यह कार्य मंगलमय है, तो भी हृदय आपके वियोग की स्मृति से हहर जाता है। प्राणवायु में विपरीत क्रिया का संचार होने लगता है। हाय ! हाय ! मेरे नेत्र बिना पुतली के हो जायेंगे। हाय ! जीवन की ज्योति, जानकी के वियोग-वायु से कंपित हो उठेगी। हाय ! भगिनि के भैया की भविष्य में क्या दशा होगी ?

[कहकर सात्विक भावों के चिह्नों से युक्त हो जाते हैं।]

श्री किशोरीजी : (कुँअर लक्ष्मीनिधिजी को सचेत करके) भैया ! आप रहस्य रस के मर्मज्ञ ज्ञानी पुरुष हैं, आत्माराम हैं, प्रेम मूर्ति हैं। आप अपने प्रेम वैलक्षण्य से सर्वतत्व विलक्षण परमात्मा को प्रेम रसास्वादन कराते हैं और स्वयं उनके मधुराति-मधुर दिव्य-स्नेह-सुधा-रस का पान करते हैं अतएव हमारे भैया का भाव-राज्य अतिशय समुज्वल है, जिसमें अपनी अनुजा का एक छत्र आधिपत्य आपने सहर्ष स्वीकार किया है, इसलिए आपके हृद्देश से अन्यत्र जाने का अल्पावकाश भी मुझे कहाँ है किन्तु न जाने क्यों हृदय में भ्रातृ-बिरह की स्मृति, अपना आवास बना रही है। लगता है, आपकी स्नेहमयी सच्चिद-सरिता में नित्य निमज्जन करने का अपूर्व-अतुलनीय आनन्द लाभ, अब मुझको न मिल सकेगा। हाय ! मुझे अब अपने अंक में बैठाकर कौन दुलारेगा। अरे, अरे ! अपने भैया की गोद में बैठकर भोजन पाने की अभ्यासिनी को अब अन्न से अरुचि उत्पन्न हो जायगी। हाय ! हाय! मेरे मन को रिझाने के लिये विविध प्रकार के खिलौने कौन ला-लाकर दिया करेगा। हाय ! अब अपने भैया का वात्सल्य पूर्ण लाड़-प्यार मेरे ललाट में नहीं लिखा है....

(हा भैया ! हा भैया ! कहती हुई किशोरी करुण-क्रन्दन करने लगती हैं। कुँअर लक्ष्मीनिधिजी व श्री सिद्धि कुँअरिजी प्यार कर, पुचकार कर धैर्य धारण कराते हैं।)

श्री लक्ष्मीनिधिजी : अनुजे ! भला सोचो तो तुम्हारा भैया तुम्हें कभी भूल सकेगा! नहीं, नहीं। जीव, जीवनी के बिना कहाँ, प्राण, प्राणिनी के बिना कहाँ ? मैं अपनी लाड़िली के वियोग को बिलकुल न सह सकूँगा। अयोध्या प्रस्थान करने के पश्चात् पीछे-पीछे मैं भी उस पावन-पुरी का दिव्य दर्शन करने पहुँचूँगा और अपनी प्राण-प्रियतरा अनुजा को भ्रातृ-पुरी मिथिला में लाकर स्वजन-संयोग के सुख का अनुभव कराऊँगा। (सिद्धिजी से) प्रियतमे ! सिद्धि-सदन में उत्तम-कोटि के, जो भी नव्य-भव्य वसन-विभूषण एवं अन्यान्य भोग्य पदार्थ हैं, उन सब संग्रहीत-वस्तुओं का साफल्य श्री किशोरीजू की सेवा में समर्पित करने पर ही है। पूर्ण-रूपेण प्रेम के प्राधीन होने के कारण प्रेम की उपयोगिता भी प्रेमास्पद को सर्वात्म-समर्पण कर देने से ही सिद्ध होती है, अतएव आवश्यक उपकरण-सामग्रियों का संगठन करके समय से ललीजू के साथ भेजने का प्रयत्न करना चाहिये। स्वप्रयोजन की प्रतिपत्ति की निवृत्ति श्री किशोरीजी के कैंकर्य करने में अबाध-गति से सर्वदा एक रस बनी रहे, यही अपना मौलिक स्वरूप है।

श्री सिद्धिजी : प्राणनाथ ! जब मैं अपनी नहीं और आप अपने नहीं, तब मेरी और आपकी कहलाने वाली, कोई वस्तु भी न रही। मैं और मेरे के समाप्त होने पर स्वतः सब उसका हो जाता है कि जिसके हम और आप हैं, अतएव आभूषणादि पदार्थों की बात ही क्या ! अगर इन आँखों का सुरमा बन सके, श्री किशोरीजू की आँखों में आँजने के लिये, तो परम प्रसन्नता से अभी-अभी दोनों नेत्रों को निकाल कर नाचती हुई, मैं अपनी ननँद को समर्पण करने को तैयार हूँ। इसी प्रकार यदि दासी के देह-चर्म की पनहियाँ बन सकें, ललीजू के चरणों के लिये, तो तत्क्षण स्व-शरीर के प्रथम आवरण (चर्म) को, अपने ही हाथ छूरे के सहारे निकाल लूँ और आपकी अनुजा को समर्पण करके कृतकृत्य हो जाऊँ क्योंकि श्री मन्मैथिली जू के शेषत्व में ही आत्मा का उपादेयत्व है। अपने हृदयेश्वर की प्रेरणा से आज्ञा देने के पूर्व ही श्री किशोरीजू को, सुख-सुविधा प्रदान करने वाली विशिष्ट-वस्तुयें, विविध भाँति के बहुमूल्य-वसन-विभूषणों के साथ एकत्रित कर ली गई हैं, जो समय पर श्री अयोध्या भेजने के लिये भवन में प्रस्तुत हैं।

श्री किशोरीजी : (साश्रु) भाभीजी ! भैया की गोद में बैठकर, भैया के ही कर-कमलों से दिये हुये कवलों द्वारा आज अपनी क्षुधा शान्त करना चाहती हूँ। हाय ! अब न जाने कब आपसे परोसा हुआ अन्नामृत भैया के हाथों से पाने का सुन्दर सुअवसर सुलभ होगा।

श्री सिद्धिजी : कृपा-विग्रहे ! आज आपके भैया आपके विरह जन्य वेदना से तड़पने के कारण भगवत्-प्रसाद का सेवन नहीं किये हैं इसलिये उन्हें भूखा न रहने देने के लिये, आप उनके साथ पाना चाहती हैं। कृपार्णवा के कृपा-बिन्दु को धन्य है, जिसमें सभी जीव-समुदाय का जीवन सन्निहित है। मैं भी भ्रातृ-भगिनी को एक साथ अन्न ग्रहण करते देखकर अपने नेत्र सफल करूँगी।

[सिद्धिजी भैया के अंक में बैठी हुई, किशोरीजू के सम्मुख विविध पक्वान्नों से भरी स्वर्ण थाली को उपस्थित करके भोजन करने की प्रार्थना करती हैं। श्री लक्ष्मीनिधिजी अपने कर-कमल से श्री किशोरीजी के मुखाम्भोज में कवल देते हैं। "यह पदार्थ बहुत अच्छा है" इसे अवश्य पाइये, कह-कहकर प्रेम से पवाते हैं। पवाते-पवाते श्री किशोरी जी के चन्द्रानन के अदर्शन का स्मरण कर नेत्र से अश्रु-धारा बहने लगती है, शरीर कम्पायमान हो जाता है, हाथ से कवल गिर जाता है।]

श्री किशोरीजी : (अश्रु भरकर) भैयाजी ! आप भी पायें तभी मुझे पाने में रुचि होगी। (कवल देने पर मुख हटाकर) नहीं, नहीं.... आप प्रभु-प्रसाद सेवन करें, तब मैं भी भोजन करूँगी अन्यथा....

श्री लक्ष्मीनिधिजी : क्या करूँ ! किशोरी जू ! कवल भीतर प्रविष्ट ही नहीं होता, पाने की रुचि न जाने कहाँ गमन कर गई है।

श्री किशोरीजी : भैया ! वास्तव में मुझे भूख ही नहीं थी, यह सब मेरा उद्योग, आपके पाने के लिये था। अतएव आप धैर्य धारण कर मेरी कामना को सफल बनायें। पाइये न। थोड़ा पाइये। मैं भी पा रही हूँ।

(दोनों भाई-बहन परस्पर के प्रेम का निर्वाह करने के लिये तथा एक दूसरे को पवाने की अपेक्षा से अश्रु-विमोचन करते हुये कुछ प्रसाद ग्रहण

कर आचमन करते हैं। श्री सिद्धिजी आसन में बैठाकर जनक-किशोर-किशोरी को ताम्बूलादि अर्पण कर नीरांजन और मंगलानुशासन करती हैं।)

श्री सिद्धिजी : आप दोनों भ्रातृ-भगिनि, अग्निवर्ची अमलात्मा, विशुद्ध-विज्ञानमय, परम हंस पद-प्रतिष्ठित मुनियों को प्रेम योग प्रदान करने के लिये प्रकट हुये हैं। दोनों का मन-मधुकर निरन्तर भाव-राज्य के अधिपति, आराध्य देव श्री रघुनन्दन रामभद्रजू के अरुण-वरण-पाद-पद्मों का पीत-पराग पीने के लिये आसक्त बना रहता है, जिस रस के आस्वाद में आप युगल-मूर्ति मग्न रहा करते हैं, उन रस-तरङ्गिनी के तीर पहुँचने के लिये कर्म-कुशल कर्मी, समाधि-निष्ठ योगी और छिन्न-ग्रन्थि ज्ञानी पुरुष कल्पना भी नहीं कर पाते। रस का अर्थ समझना, उनके मस्तिष्क का विषय नहीं है, यह तो प्रेमियों का प्राण और हृदय के धनिकों का धन है। राम-रस के श्रद्धालु-रसिकों का रस-पान-प्रभूत आनन्द, ज्ञान-विज्ञान के अधिष्ठातृ-देवताओं को भी दुर्लभ है, वे सदा अतिशय अतृप्ति का अनुभव किया करते हैं। श्री रसिकेन्द्र शेखर श्रीरामजी को रमाकर आह्लादित करने के लिये, रस-स्वरूप नृपति-किशोर-किशोरी क्रमशःआह्लाद-तत्व और आह्लादिनी-शक्ति हैं, जो सर्वभावेन, सर्वथा सर्व देश, सर्व काल में आनन्द-सिन्धु कौशिल्यानन्द वर्धनजू से अपृथक हैं और उन्हीं के भोग के लिये, उन्हीं की नित्य-नियत भोग्य वस्तु हैं। लीला-क्षेत्र में गोचर और परिवर्तन-शील होने वाली द्वय-मूर्तियाँ वास्तव में अगोचर और अपरिवर्तनशील हैं। आप दोनों रामजी को अपना अनुभव कराने के लिये उनके स्वयं भोग्य हैं और उनका अनुभव करने के लिये भावुक-भोक्ता हैं, अतएव सम्बन्धानुसार रसमयी-लीलाओं के द्वारा, दोनों भाई-बहन स्वयं रीझकर रामजी को रिझाते रहें, यही मात्र मेरी अभिलाषा है। आपका प्रसन्न-प्रफुल्ल-मुखार्विन्द देख-देखकर यह किंकरी कृत कृत्य होती रहे, यही इष्टदेव से अनुनय-विनय और प्रणामकर-करके अंचल पसार नित्य-नित्य याचना किया करती हूँ। वर्तमान समय की झाँकी का ध्यान ही मुझे मृत्यु से बचाने का एकमात्र उपाय है, इसलिये भ्राता और भगिनि का पुनः मिलन जब तक न होगा तब तक उक्त साधन के सहारे प्राण-पखेरू पिंजड़े में पड़े-पड़े बड़े कष्ट से कालक्षेप करेंगे।

[हाय ! कहकर श्रीधर-कुमारी दोनों के चरणों में गिर जाती हैं। श्री किशोरीजी साश्रु कर-स्पर्श करती हुई, अपनी भाभी को प्रकृतिस्थ कर देती हैं।]

श्री लक्ष्मीनिधिजी : प्रियतमे ! श्री किशोरीजी का अनुपमेय भ्रातृ स्नेह विश्व-स्रष्टा ब्रह्मा से भी वाणी द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता। ठीक इसी प्रकार उनका भाभी-प्रेम भी भारती से अवर्णनीय और गणपति से अउल्लेखनीय है। हम किशोरीजू को कितने प्यारे हैं, इस उत्तर की अप्रतिम-अनुभूति अपनी आत्मा को अहर्निशि होती है अथवा इससे अभिज्ञप्त हैं मेरे प्राण, कि ललीजू से पृथक होने की कल्पना कर इन पर क्या बीतती है, किन्तु मुझे यह पीड़ा भी इसलिये प्यारी है कि इसका सम्बन्ध श्री लाडि़लीजू से है, विलग होने पर वह आँखों की अनदेखी ध्यानावस्था की ध्यानमयी झाँकी, वह बाह्य श्रवणों से अनसुनी श्री किशोरीजू की मिठास भरी वाणी, वह भूतकाल का माधुर्य पूर्ण विशुद्ध-व्यवहार, वह मेरे चिन्तन की विषय भागनि और भगिनि की अनुभूत लीला,

यही मेरे शाश्वत-सुख का सुन्दर स्रोत है, मेरे अनिर्वचनीय आनन्द का कोष है, मेरे प्राणों की आधार-शिला है और मेरे जीवन की संजीवनी है। यहाँ समय अधिक लग गया है अतएव मंगल मनाती हुई, आप सखियों सहित शीघ्र श्री किशोरीजू को श्री अम्बाजी के भवन में पहुँचाने जाँय और मैं जनवासा जा रहा हूँ, श्री चक्रवर्तीजी महाराज के पास।

श्री सिद्धिजी : मैं भी यही सोच रही थी, प्राणनाथ ! श्री ललीजू को यहाँ आये हुये बड़ा विलम्ब हो गया है, श्री अम्बाजी प्रतीक्षा में होंगी, यह सामने खड़ी हुई दासी भी माताजी के समीप से इसीलिये आई है कि किशोरीजू वहाँ पधारें, अतएव मैं आपके आज्ञानुसार अभी लाड़िलीजू को लेकर, अपनी सासुजी के सदन जा रही हूँ।

[श्री लक्ष्मीनिधिजी, सिद्धिजी सहित अत्यन्त लाड़-प्यार कर अश्रु-विमोचन करते हुये, अपनी अनुजा को विदा देते हैं। श्री किशोरीजी सहित सिद्धिजी का अम्बा के भवन की ओर प्रस्थान।]

पटाक्षेप

....

पञ्चत्रिंशः दृश्यः ३५

[श्री सिद्धिजी सखी-सहेलियों से सेवित अपने विमानाकार भव्य-भवन में सुन्दर स्वर्ण-सिंहासन पर बैठी हैं। श्री किशोरीजी व रामजी के रूप-गुण-शील-स्वभाव का परस्पर अनुकथन करके, प्रेम की प्रबलता से बिरहाकुल हो रही हैं।]

[दासी का सिद्धि-सदन में प्रवेश .....]

दासी: (प्रणाम करके) कुँअर-कान्ते ! आप श्री से मिलने के लिये अन्तःपुर में कुँअर जी के साथ आपके चन्द्रकीर्ति चारों ननदोई आ रहे हैं।

श्री सिद्धिजी : अहा ! मेरे भाग्य-वैभव का विधाता विश्व की समस्त विभूतियों को तिरस्कृत करके, मुझे आनन्द के झूले में झुलाने के लिये, मेरे गृह आ रहे हैं। धन्य हो गई मैं ! सहेलियों ! आरती सजाकर आर्ति-हरण की आरती उतारने के लिये द्वार पर चलना चाहिये।

सखियाँ : (समवेत स्वर से) स्वामिनीजू ! आपके भूरि-भाग्य से हम सब सहचरियों का भी भाग्य-भानु प्रकाशित होकर, आत्मा को आनन्दानुभव कराने से वञ्चित न रखेगा। आपकी जय हो, जय हो। आरती सज्जित तैयार है, श्रीमन्-मोहन दुलहे की आरती करने के लिये आप पधारें।

[द्वार पर जाकर श्री सिद्धि कुँअरिजी चारों दुलहों की आरती उतार कर बलैया लेती हैं। श्री लक्ष्मीनिधिजी चारों बहनोइयों को अन्तःपुर लाकर बैठने को चार सिंहासन देते हैं, तत्पश्चात् सपत्नीक अपनी आत्मा के अतिथियों का वेद-विधि से पूजन करते हैं। श्री राम जी महाराज अपने प्राण-प्रिय सखा मिथिलेश-कुमार को अपने आसन में बैठाकर परमानन्द का अनुभव कर-करके परम प्रसन्न हो रहे हैं।]

श्री सिद्धिजी : प्रियतम ! प्रेम-प्रवण पुरुष प्रेम-राज्य में, मुक्ति, भुक्ति की स्पृहा न रखकर, प्रेमास्पद की प्रसन्नता के लिये प्रिय-कैंकर्य करते हुये निवास किया करते हैं। प्रेम का ही श्रवण दर्शन, स्पर्शन और अवगाहन उनका आहार होता है और वे प्रेम को ही अनल्प, अमृत, भौमा सुख समझते हैं। प्रियतम का प्यार ही उनके प्राणों को प्राणित करता है, जीव को जीवत्व के साथ जीवन देता हैं, प्रियतम को प्यार करने और उनसे प्यार पाने की प्रेम पूर्ण प्रक्रिया ही प्रेमी का प्रधान कर्म है। प्रेमास्पद के अतिरिक्त प्रपंच-ज्ञान का तिरोभाव और जड़-चेतन जगत में, अपने प्रियवर की प्रिय झाँकी देखने वाले ज्ञान का आविर्भाव ही प्रेमी का पूर्ण विज्ञान है। प्रेमास्पद में अत्यन्त आसक्ति युक्त अनुरक्ति ही प्रेमी की भक्ति है, जिसमें सर्वात्म-समर्पण स्वयमेव सिद्ध हो जाता है और तत्सुख-सुखी रहकर, प्रियतम के मुखोल्लास विवर्धन हेतु कैंकर्य करना, प्रेमी का परम पुरुषार्थ है; यह भलीभाँति जानते हुये भी मेरे ननदोई ननँद को लेकर, हम पति-पत्नी को सुनसान अन्धकार पूर्णा पुरी में छोड़कर अयोध्या प्रस्थान करना चाहते हैं। हाय.... ! यह सिरस-सुकुमार-श्यामसुन्दर-वरवपुष आँखों से ओझल होते ही, हमें विरह-वह्नि में भस्म किये बिना न रहेगा। हाय ! मेरे मन-मोहन ! मेरा मन तो आपके साथ है, मैं अकेली यहाँ रहकर किंकर्त्तव्य-विमूढ़ क्या करूँगी; अतएव मुझे भी अपनी गृह-किंकरी समझकर महल की टहल कराने के लिये अपने साथ ले चलने की कृपा करिये क्योंकि आप आरति-हरण शरण सुखदायक सबके बन्धु हैं। हाय ! जानकी-नाथ के बिना, जीवन में निराशा ही नजर आ रही है । हा ! प्राणाधार ! प्राण के प्राण बिना, मेरे प्राण कैसे रहेंगे। हे मेरे प्रेम-पारखी ! इस प्रेमिका का हृदय आपसे अविदित नहीं हैं। हाय हाय ! सर्वस्व छिना जा रहा है, आँखों के सम्मुख घोर अंधकार ही दृष्टिगोचर हो रहा है। हा ! मेरे श्यामाश्याम...!

[कहकर श्री सिद्धि जी श्री रामजी के चरणों में स्मृति हीन होकर गिर जाती हैं। लक्ष्मीनिधिजी उठकर अपने को सम्हालते हुये, उपचार के द्वारा प्रकृतिस्थ करते हैं।]

श्री लक्ष्मीनिधिजी : (साश्रु) प्यारे राघव ! अवश्य ही प्रेम के पूर्णतम साधन-साम्राज्य में सिद्धि कुँअरिजी अभिषिक्त हैं। प्रेम-योग का पूर्ण ज्ञान, पाण्डित्य, प्रेम-पटुता तथा तत् सम्बन्धी कार्य क्षमता इन्हें भगवत-कृपा से सहज संप्राप्त है। ये अपने ननँद-ननदोई को ही प्रेम का अधिष्ठातृ-देवता तथा प्रेमास्पद मानती हैं; अतएव आप श्री के युगल-पाद-पद्मों का पराग पीने के लिये, इनका मन-मधुकर सदा अपने आश्रय प्रदाता के पास गुंजन करता हुआ मंडराता रहता है ।इन्हें आपके वियोग-जन्य विरह की व्याधि, बाधा पहुँचाये बिना न रहे गी। इनके प्रेम का प्रभाव जब मुझको प्रभावित करके प्रेम-प्रकाश से प्रकाशित कर देता है तब मैं भी प्रेम-पात्र सा प्रतीत होने लगता हूँ और चेतना-हीन जगत में मेरा जीव जाकर, जीव के जीव में प्रतिष्ठित हो जाता है; इस प्रकार की परिस्थिति उत्पन्न होने पर, एक-दूसरे को प्रकृतिस्थ करने के लिये परस्पर हम दोनों क्षमता नहीं रख पाते। हाय ! अब उन्हीं दिनों का आलिंगन करना है जिनमें विरह की वह्नि हमें जलाने के लिये हमारे हृदय में धधक उठेगी। हा ! श्याम सुन्दर का वियोग होगा ? मेरे मानस के मनमोहन मित्र मिथिला से चले जायेंगे ? हाय ! मेरा सर्वस्व लुट जायगा क्या ? मेरे प्राणों के प्राण, प्यारे प्रियतम मुझे छोड़ देंगे क्या ? अरे ! अरे ! मिथिलेश कुँअर को अवधेश कुमार अयोध्या न ले चलेंगे क्या ? हाय ! हाय ! अमृत को प्राप्त कर भी मृत्यु मेरा वरण करेगी क्या ? हाय! आँखों के सामने अंधकार छा रहा है। हा! मालूम पड़ता है, मेरे

प्राण–प्रियतम भानुकुल–भानु अपने भवन चले गये। हा रघुनन्दन ! हा श्याम सुन्दर ! हा प्राण वल्लभ !

[इत्यादि पुकार–पुकारकर कुँअर वैचित्र्य–प्रेम की स्थिति में प्रविष्ट होकर प्रलाप करते–करते स्मृतिहीन हो जाते हैं। श्री सिद्धिजी भी छाया की भाँति उनका अनुसरण करती हुई, चेतनाहीन हो जाती हैं। श्रीरामजी महाराज भी दोनों के प्रेम से, प्रेमाश्रुओं का स्राव करते हुये, सात्विक भावों से भर जाते हैं। पुनः धैर्य धारण कर अपने कर–कमलों का स्पर्श दे देकर दम्पति को प्रकृतिस्थ करते हैं।]

श्री रामजी : मेरे प्राण–प्रिय सखे ! निशीथ की विश्रान्ति–बेला में जब सब गाढ़ निद्रा में सोये हुये संसार का स्वप्न भी नहीं देखते तब मैं उस अंधकार से आछन्न अर्ध–रात्रि में, अपने आत्म–सुहृद का स्मरण कर चुपके–चुपके आँखों से अविरल आँसू बहा–बहाकर अश्रु–वारि से प्रियकर–प्रेम के पौधे का सिंचन कर–करके, उसका विवर्धन किया करता हूँ। सबेरा होते ही सुहृद का सम्मिलन होगा, इस आशा से प्रातःकाल की प्रतीक्षा में चित्त, चञ्चलता को छोड़कर स्मरण करते–करते आपके स्वरूप में संयमित होने से समाधिस्थ हो जाता है। कभी–कभी भाव–विभोर की स्मृति–हीन अस्वस्था में मुख से, "हे मिथिलेश कुमार ! हे सखे ! हे प्राण–प्रिय !" निकल जाने से पीछे से लज्जा लगने लगती है कि कहीं कोई गुरुजन सुन लिये होंगे तो क्या कहेंगे इस दशा ने मिथिला में रहते हुये ही, मुझे वरण कर लिया है, जबकि नित्य आपके अनंग–मोहन अंगों का अनुभव किया करता हूँ। अयोध्या में आपके बिना निवास करने पर, अपनी स्थिति का अनुमान कर लेना मेरे मन और वाणी के वश की बात नहीं है। अधिक क्या कहूँ ? आपके चन्द्रानन का चकोर राम, पलक गिर ज़ाने पर विरह–वेदना से विह्वल हो जाता है। हाय ! मैं अब अपना न रहा, अपने श्याल और सरहज का हो गया। हाय ! मेरे दोनों नेत्रों की दोनों पुतलियाँ क्या मिथिला में ही रह जायेंगी। हाय मेरे अन्तर और बहिर्प्राण ही जब मेरे पास न रहेंगे तब मेरा जीवन कैसा ? हा ! सिद्धि–सदन में सदा रहने वाली सिद्धि कुँअरि। हा ! लक्ष्मी के लाड़िले लक्ष्मीनिधि !

[कहकर श्रीरामजी प्रेम विभोर होकर श्याल के अंक का आश्रय लेते हैं। श्री सिद्धिजी व लक्ष्मीनिधिजी साश्रु, चेतना युक्त होने के लिये उपचार करते हैं।]

श्री सिद्धिजी : प्रेम–मूर्ते ! आपका अकारण प्रेम ही प्राणियों के प्राणों को प्राणित एवं संचालित कर रहा है यदि एतादृशी वार्ता न होती तो चन्द्र कीर्ति चराचर प्राणि समुदाय को चन्द्रमा के समान प्रिय न प्रतीत होते। हम लोग तो आपके निज जन हैं, अतएव अपने सगे–सम्बन्धी जनों में अत्यन्त अनुराग का होना, आपके लोक–विलक्षण–स्नेह-औदार्य के अनुरूप है। आपकी अप्रतिम अनुकम्पा ने ही हम लोगों को आप श्री से सम्बन्धित कर आपके प्रति प्रेम–प्रवण बना दिया है। अन्यथा आकाश में कुसुम कहाँ ? आप हमारे विरह की स्मृति करके आह और आँसू को भरते हुये स्मृति हीन हो जाते हैं, यह सब हम लोगों के अन्तराल में आसीन विरह–वह्नि के विवर्धन के लिये घृत की आहुति है । हाय ! कलेजे को कोई करोये ले रहा है, श्याम सुन्दर की साँवली सूरत आँखों से ओझल हो जायगी क्या ? रघुनन्दन मुझे अपने साथ न ले जायेंगे क्या ? हाय ! विरह–दाह के कारण

दग्ध भूत देह से निष्क्रमण कर, मेरे प्राण अपने प्राण–प्रियतम सीता–वल्लभ के समीप साकेत पहुँचने के लिये उत्क्रमण कर रहे हैं क्या ? समझ नहीं पाती, हृदय में क्या और कैसा–कैसा हो रहा है। ननँद और ननदोई नयनों के विषय बने रहें, यही मन को अच्छा लग रहा है। यह जानती हूँ, खूब जानती हूँ कि युगल मूर्तियों का अयोध्या पधारना मंगलमय है, मेरे आनन्द को अतिशय करने के लिये है फिर भी मुझे विरहिनी की भाँति भवन में रहने की कल्पना कटु लग रही है। हाय ! कल मेरे मिथिला–बिहारी–बिहारिणी जू मिथिला को सूनी कर, अयोध्या प्रस्थान करेंगे। हाय ! यह गृह प्यारे के बिना मुख बाये हुये, मुझे खाने को दौड़ेगा। हाय ! हाय ! मेरे प्रीतम मुझे अपने साथ क्यों नही ले चलते ? क्या करूँ? अरे कोई बतला दे मैं कहाँ जाऊँ? हाय! जली जा रही हूँ। जलती हुई को कोई शान्ति का सहारा सुलभ न होगा, क्या, हाय ! हाय..... !

[कहकर सिद्धिजी मूर्छित होकर श्रीरामजी के चरणों में गिर जाती हैं। श्री रामजी कर–कमल–स्पर्श करते हुये, उपचार के द्वारा चेतना प्रदान करते हैं।]

श्री रामजी : (साश्रु) कुँअर–वल्लभे ! भवदीय–भाव रूपी, भगवान–भास्कर सबके हृदय में भाव–भरी प्रेमाभक्ति के उत्पादक व अभिवर्धक हैं। आश्चर्य ! आश्चर्य ! आपके प्रेमोपहार की एक अश्रु–बिन्दु ने मुझ चक्रवर्ती–कुमार को आपका ऋणियाँ बनाने में नाम मात्र संकोच नहीं किया। अहो ! मेरे मन ने भी मेरा साथ नहीं दिया, वह तो आपको छोड़कर एक क्षण भी मेरे समीप आने को तैयार नहीं, बुद्धि भी आपके अलौकिक प्रेमार्णव से कतिपय रत्नों का अन्वेषण करने के लिये गहरे पानी पैठी, तो मुक्ताओं का लाना दूर रहा उसी उदधि में विलीन हो गई। आत्मा को मैं अपनी समझा था किन्तु वह भी आपकी आत्मा से अपना पृथक अस्तित्व खो बैठी। बाकी बची देह, तो उसे ऋण के किसी अंश से मुक्त होने के लिये आपको ही समर्पण कर चुका हूँ, साराँश में, मैं और मेरा स्वत्व सर्वथा सर्वभावेन आपको समर्पित है, अतः आप स्वेच्छा से अपने अभीष्ट की सिद्धि के लिये राम का विनियोग करती रहें। मेरा मन जब मिथिला में है, तब मैं मिथिला में ही हूँ और आप लोगों का चित्त, जब मुझ में लगा है तब जहाँ मैं हूँ, वहाँ ही आप हैं, अतएव हम लोग परस्पर ज्ञान दृष्ट्या तत्वतः पृथक नहीं हैं, यह बात अवश्य है कि लीला में अति रस का आविर्भाव करने के लिये कभी–कभी चर्मचक्षुओं के विषय बनने में विघ्न समुपस्थित हो जाता है जैसे कल प्रातः बेला में श्रीमान् दाऊ जी के साथ, हमको भी अयोध्या प्रस्थान करना आवश्यक और अनिवार्य होगा। आप लोग साथ में हमारी पितृ–पुरी पहुँचें, हमको इससे अधिक आनन्द का हेतु अन्य कौन–सा साधन होगा क्योंकि आपकी मुख श्री अवलोकन के आगे, सभी सुखों का तिरस्कार चित्त की भीति पर चारुतया चित्रित है किन्तु श्रीमान् मिथिलाधिपति का अनुशासन प्राप्त किये बिना चलना उनके पुत्र या पुत्र–बधू के स्वरूपानुरूप न होगा। समय से आपका अवध और मेरा मिथिला आना–जाना लगा ही रहेगा। परमानन्द की वृष्टि होती ही रहेगी, अतएव धैर्य का अवलम्बन ग्रहण करें। अधिक संभव है कि कुछ गिने दिनों के पश्चात् ही राजाज्ञा से शीघ्र आपको अयोध्या प्रस्थान करना पड़े। अहो ! हम आपके साथ अपनी नगरी में विहरने का सौभाग्य सम्प्राप्त कर सुख–सिन्धु में सम्प्रविष्ट हो जायेंगे।

श्री सिद्धिजी : (साश्रु) आर्य ! अवनि-मंडल का सार्वभौम सुख आपके संयोग सुख के आगे सर्व भावेन नीरस और नगण्य है। प्रियतम के संयोग जनित सुख के सामने आकर कोटि-कोटि विपत्तियाँ भी सुख के रूप में परिवर्तित हो जाती हैं और प्यारे की वियोग-दशा में प्राप्त होने वाले कोटि-कोटि सुख भी दुख स्वरूप धारण कर लेते हैं। आप श्री के संयोग-काल में कल्प भी लव-मात्र मालुम पड़ता है तथा वियोग के दिनों में लव भी कल्प के समान भासित होने लगता है। हे रसिक-शिरोमणे ! आपके संयोग सम्भूत सुखार्णव के सामने कोटि-कोटि ब्रह्माण्डों की समष्टि सुख-सम्पत्ति-समृद्धि बिन्दु मात्र प्रतीत होती है, इसी प्रकार आपके वियोग से प्रादुर्भूत विपत्ति के सामने अनन्त-ब्रह्माण्डों की यावत् विपत्तियाँ हैं, वे लेशमात्र भी नहीं ठहरतीं; अतएव आपके अयोध्या गमन को मंगलमय जानती हुई भी, सेविका विरह के भय से सहमकर वियोग-दशाओं का आलिंगन करने लगती है। प्यारे ! आप ही अन्तर के अन्तर्यामी और बाह्य के बाह्यामी हैं। आप ही की इच्छा-शक्ति से संसार में सब कुछ होता है। आप ही कर्ता और कारयिता हैं, आप ही भोग्य और भोक्ता हैं, अस्तु आप जब, जैसे जहाँ रखना चाहेंगे तब तैसे वहाँ रहना दासी का सहज स्वरूप है। आपकी मधुर-स्मृति में विरह-वेदना से व्यथित होकर नित्य जीना और मरना ही प्रेमियों का जीवन है। आपको संकोच देकर साथ जाना, आपके श्याल और सरहज का स्वरूप नहीं है, अस्तु आपकी इच्छा में अपनी इच्छा विलीन कर विह्वल बने हुये, मिथिला की अंधेरी में अन्धे की तरह, हम लोग काल यापन करेंगे। हमारे ननँद-ननदोई का मंगल हो,मंगल हो, मंगल हो..... !

[कहती हुई श्रीरामजी के चरणों में मस्तक रखकर प्रेमाश्रु विमोचन करने लगती हैं]

श्री रामजी : (सिद्धिजी को उठाकर) सौम्ये! आपका मंजु-मनोहर स्वभाव शशि के समान शीतल और लोक प्रिय है। आपके रूप में मूर्तिमान प्रेम का ही दिव्य-दर्शन सबको सुलभ हो रहा है। आप दम्पत्ति का आसक्त-मन अनेकों यत्न करने पर भी मुझसे क्षण मात्र विलग नहीं होता, मैं भली-भाँति जानता हूँ किन्तु लीला देवी के संविधान के सामने, सभी की शक्ति कुण्ठित हो जाती है; अतएव पूर्ण प्रसन्नता के साथ, उस प्रेरणात्मक-अचिन्त्य शक्ति का सम्मान करते हुये तदनुसार हम सब पाठकों को पाठ करना चाहिये अन्यथा अहंकार कृत दोषों से दबकर, दुर्दशा पूर्ण दुखों की परम्परा में पड़े-पड़े कभी भी निर्भीकता से युक्त शान्तिसुख की अनुभूति न होगी।

श्री लक्ष्मीनिधिजी : (साश्रु) सखे ! खूब समझता हूँ, लीलाशक्ति की सामर्थ्य को। होनहार होकर ही रहती है, उसमें कभी किंचित उलट-पलट होना असंभव है किन्तु यह सब समझते हुये भी इन्द्रियाँ, अपने अलौकिक विषय को न पाने की आशंका से क्यों अधीर होकर अपने विषय के सेवन करने की शक्ति को भी समाप्त किये दे रही हैं; यह सब जानकी-जान के अनिर्वचनीय रूप, गुण, और स्वभाव के अप्रतिम-औदार्य का ज्योतिर्मय जादू है इसलिये धैर्य साथ न दे, तो हम क्या करें ?

श्रीरामजी : (साश्रु) प्रेम की पीड़ा प्रेमी ही समझता है। आप दोनों के अगाध-अनुराग ने सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र को आपके आधीन बना दिया है, निरपेक्ष को सापेक्षता के सिंहासन में प्रतिष्ठित कर दिया है। सखे ! जैसे दिन मेरे वियोग में आप लोगों के व्यतीत होंगे

वैसे ही मेरे दिन आपके विरह में कटेंगे, जानते हुये भी विधि के विधान का अनुसरण करना, आर्य-संतानों का श्रेयस्कर स्वधर्म हो जाता है, विशेष कर क्षत्रिय-कुमार का कर्त्तव्य, कर्त्ता और कारयिता (ईश्वर) के मुखविनिस्सृत वेद-वाणी का अक्षरशः पालन, ज्ञान, भाव, प्रेम और क्रिया के साथ प्राण-प्रण से करने में पूर्ण होता है। अब अपने हृदयहारी दोनों हृदयों से अनुमति चाहते हैं कि जनवासा जाकर हम श्रीमान् पिताजी को प्रणाम करें, वे प्रतीक्षा में होंगे। यहाँ आपकी स्नेहमयी-वार्त्ताओं की मधुरिमा ने श्रवण-प्रियता के कारण समय का ज्ञान ही न रहने दिया। पारस्परिक-वियोग का परिरम्भण काल-देव की प्रेरणा से, हम सबको करना ही पड़ेगा। हाय ! आप लोगों का अदर्शन अत्यन्त असहनीय आभासित हो रहा है, फिर भी बिदा लेने की बात पिताजी की प्रेरणा से सुबह मुझे ही अपने मुख से निकालनी होगी हाय...... !

(श्री रामजी प्रेम में विभोर होकर कुँअर का आलिंगन करते हैं।)

श्री सिद्धिजी : (साश्रु) सकल चेतनाचेतन वर्ग प्राणियों के प्राण प्रिय रघुनन्दन! आपके अकारण अनुग्रह से आपकी सरहज कहलाने का सौभाग्य प्राप्तकर लेने पर, मुझे कुछ पाना शेष नहीं रहा, जब आपके श्री चरण-कमल मेरे आश्रय-प्रदाता हैं, श्री कर-कमल अभयदानि हैं और मन्दस्मिति युक्त विकसित मुखाम्भोज मेरा भोग्य है, तब मुझे सम्पूर्ण सुर-सुन्दरियों से स्पृहणीय हो जाने में आश्चर्य क्या ? आपकी अहैतुकी कृपा की जय हो, जय हो, जय हो। प्रियतम ! जनवासा के लिये प्रस्थान करें किन्तु अवध जाने पर मेरे विरह-ताप को किंचित शमन करने के लिये, प्रेम-सन्देश या प्रेम-पत्रिका भेजते रहेंगे तथा मेरी विरह-वह्नि को बिल्कुल बुझाने के लिये शीघ्रातिशीघ्र समय से पुनः दर्शन देने की कृपा करेंगे अन्यथा आपकी दासी कहीं उक्त अग्नि में भस्म न हो जाय।

(सिद्धिजी पुनः श्रीरामजी के चरणों में गिरकर रोने लगती हैं।)

श्री लक्ष्मीनिधिजी : (साश्रु) जीवन-सर्वस्व ! आपके सुशीतल-कटाक्ष का माधुर्य, मेरे मन को उन्मत्त बना दिया है, जिसका आस्वाद लेते-लेते भी मैं अतृप्त बना हुआ हूँ । नयनाभिराम ! यदि इस नराधम के नयनों से नर वर भूषण को अदृश्य ही होना है कुछ दिनों के लिये, तो अपनी निर्हेतुकी-दया से दयासिन्धु ! अपने अङ्ग-प्रत्यङ्गों के सर्वविधि अनुरूप, "जिसमें लोक-विलक्षण सौन्दर्य, सौकुमार्य, माधुर्य, सौष्ठव, लावण्य, लालित्य, मन मोहकत्व, और वशीकरणत्व का समीचीन चित्रण किया गया हो" ऐसा सर्वाङ्गीण सुन्दर स्व-चित्र अपने श्याल-सरहज के आधार और शान्ति के लिये बनवाकर प्रदान करें। आप श्री सर्व प्रकारेण समर्थ हैं।

श्रीरामजी : (आर्द्र चित्त से) मेरा स्वयं का अनुभव है कि आप दोनों को मेरे वियोग की कल्पना कटु और असह्य है इसलिये दैनिक समाचार-सन्देश अवध से राजदूतों द्वारा भेजने का प्रयास करता रहूँगा क्योंकि पत्र न पाने से आप में उत्पन्न हुई उदासी और उद्विग्नता, चक्रवृद्धि ब्याज की तरह मूल को दुगुना-तिगुना कर मुझे शोक के सागर में सम्प्रवेश करायेगी; अतएव आपको पत्र देना, आपके सुख-स्वार्थ के लिये नहीं अपितु अपने आनन्द-अर्जन के लिये है। नयन-प्रिय कुँअर ! मेरा मनोज्ञ चित्र जो आपके अनुकूल और आकर्षक होगा, अयोध्या जाकर असाधारण प्रयास से किसी सुयोग चित्रकार द्वारा चित्रित कराकर अवश्य भेजने का प्रयत्न करूँगा। मिथिला में रहते हुये भी चित्र तैयार होना संभव हो सकता था किन्तु अब समय शेष मात्र है।

श्री लक्ष्मीनिधिजी : उदार शिरोमणे ! आपका औदार्य, जन–मन–रंजन के हेतु, प्रतिक्षण चरमोत्कर्षता के रूप में दृष्टिगोचर होता रहता है। प्यारे रघुकुलभूषण की जय हो, जय हो, जय हो।

श्री रामजी : मेरे हृदय–हरण ! सिद्धि–सदन के सुन्दर सुकक्ष में सुसज्जित हमारे श्याल और सरहज के साक्षात् प्रतिबिम्ब जैसे चारुतम चित्र मेरे चित्त को, उसी प्रकार चुरा लिये हैं, जैसे आप ! अतएव आकांक्षी को अन्य भेंट न अर्पण कर वही दोनों दिव्य–चित्र प्रदान कर दें ताकि अवधपुरी में आपके न रहने पर, हम युगल चित्रों का दर्शन कर विरह–ताप के मान में कुछ कमी कर लिया करें यद्यपि क्षत्रिय कुमार को अयाचना अत्यन्त अपेक्षित है किन्तु आपके भावी–विरह की भावना से उद्‌भूत आर्ति–दशा ने, मेरे मुख से माँगने का कार्य करा ही लिया है।

श्री सिद्धिजी : प्रियतम ! आपके पादारबिन्दों में अनुरक्ति उत्पन्न होते ही सर्वस्व स्वत्व स्वयं समर्पित हो चुका था, न मैं रही, न मेरा। एक आप और आपकी वस्तु का अस्तित्व अमिट–रूप से सर्वत्र सर्व समय विद्यमान रह गया है अतः अपनी वस्तु को आप स्वतन्त्रता पूर्ण जब चाहें, उपयोग कर सकते हैं। आपने अपने जनों को मान देने के लिये ही उक्त वाणी का विसर्ग किया है। प्यारे ! श्री किशोरीजी की इच्छा समझकर, आपके कहने के प्रथम ही मैंने एक मनोज्ञ–मंजूषा में बन्द कर चित्रों को आप श्री के साथ अयोध्या जाने वाली सामग्रियों के साथ रख दिया है। नेह निबाहने वाले मेरे ननदोई की सदा जय हो, सदा जय हो, सदा जय हो।

श्री रामजी : (साश्रु) जी नहीं चाहता कि आप लोग मेरी आँखों से ओझल हों किन्तु पिताजी प्रतीक्षा में होंगे इसलिये अब आर्योचित्य के अनुरूप बन्धुओं समेत, हमें जनवासा के लिये प्रस्थान करना चाहिये, अभी तो भेंट होगी ही।

[श्री लक्ष्मीनिधिजी व श्री सिद्धिजी अत्यन्त अर्ति दशा को प्राप्त भावी–विरहाम्बुधि में अवगाहन करते हुये व्याकुल होकर श्रीराम जी को विदा देते हुये एक साथ ही पद गाते हैं।]

पद : रहि न सको तो जावो, पुनि आवो
चारों कुँअर जाय जनवासहिं, पितु–पद शीश झुकावो ।
आर्य–पुत्र को आर्य उचित पथ, चहिय अवशि अपनावो ।
सुन्दर वदन दिखाइ सबन्हि को, तरसत नयन जुडावो ।
हर्षण हमहिं दरश पुनि दै के, हिय ते हियहिं लगावो ।

श्री लक्ष्मीनिधिजी : (साश्रु) प्राण प्रिय ! यदि रह नहीं सकते तो आप चारों कुमार पधारें। क्या कहें। ये नेत्र आपकी रूप माधुरी का पान करते हुये भी सदा अतृप्त ही बने रहते हैं। अच्छा... मेरे जीवन–सर्वस्व अब आप प्रस्थान करें, विलम्ब भी बहुत हो चुका है।

[सपत्नीक श्री लक्ष्मीनिधिजी प्रेम–विभोर होकर, चारों भाइयों से मिलकर पुनः उन्हें द्वार तक पहुँचाने जाते हैं। चारों चक्रवर्ती कुमार प्रस्थान करते हैं।]

पटाक्षेप

....

[आज श्री किशोरीजू के विदा की तैयारी शीघ्रता के साथ हो रही है। श्री सिद्धिजी आह्निक-कृत्यों का निर्बाह करके, सूर्योदयोपरान्त निज-सदन में सखियों समेत खिन्न-मना बैठी हुई हैं। सबके मुख से आह और आँखों से अश्रु निकल रहे हैं। किंचित धैर्य आने पर सब श्री रामजी व किशोरीजी का चरित्र-चिन्तन एवं उनके रूप, गुण, स्वभाव का स्मरण व वर्णन कर-करके विरह-विभोर हो रही हैं। लगता है कि करुणा की अनेक चैतन्य-मूर्तियाँ सिद्धि-सदन में स्व-स्वरूपानुरूप प्रतिष्ठित हैं। सिद्धिजी श्री युगल-द्म्पत्ति का गुणगान कर रही हैं।]

पद : रामरूप सुख – धाम मनोहर, सिय – सुन्दरि सुखदाई ।
गुण के अयन मैन – रति मोहक, छबि सिंगार इक ठाई ।
इक इक के अनुरूप अहें दोउ, सबहिं भाँति लखि लीजै ।।
दोउ सम दोउ और नहिं त्रिभुवन, सीय-राम-रस पीजै ।
हिय के हरण दृगन के तारे, हाय ननँद-ननदोई ।
करिहैं अवध – पयान आज सत, मिथिला सूनी होई ।
हाय जियब धिक-धिक बिनु तिनके, विरह-कटार की मारी ।
विलपहिं सिद्धि सहित सब सखियाँ, करुणा-रस महँ गारी ।

श्री सिद्धिजी : चित्रे ! गत-रात्रि में विरह-व्यथा से व्यथित मुझ विरहिनी को निद्रा-देवी ने अपने अंक में स्थान नहीं दिया, किंचित तन्द्रा लगते ही स्वप्न का संसार सम्मुख समुपस्थित हो गया। हाय ! असह्य-विरह की विचित्र वेदना का अनुभव कर रही थी मैं कि श्याम सुन्दर रघुनन्दन ने श्री किशोरी के साथ आकर मेरे भूमि-शायी-शिर को उठाकर अपनी गोद में रख लिया पुनः चेतना प्रदान कर कहा कि, "व्याकुलेक्षणे ! आप मेरे हृदय केआनन्द हृद में निवास करके भी इतनी व्याकुल-बदना बनकर विदेहा बनने क्यों जा रही हैं ? कुवलय के सदृश्य आपकी आँखों के स्रोत से अश्रुओं का अजस्र झरना क्यों निर्झरित हो रहा है ? चित्त चेतना का चयन क्यों नही कर रहा ? अस्तु चिन्ता का चित्त से निष्कासन कर दें, वियोग-काल में ऐष्ट का अनुसंधान करते ही, अपने मन-मानस में मेरी मंजु-मूर्ति-मरालिनी को अपने गुण-गणों की मनोहर मुक्ता चुगते हुये पायेंगी। भीतर के भव्य-नेत्रों से नेत्र-प्रिय को निरख-निरख कर नितान्त निहाल होती रहेंगी।" सखि! मन-मोहन के मुख से चित्तापहारिणी मधुर-मधुर उक्त वाणी को श्रवण करके जग गई, दिव्य-दृश्य दूर हो गया, हृदय तड़प उठा, आहें भरने लगी और आँखों से भाद्र-मास की वर्षा होने लगी। दयनीय-दशा का संप्रेक्षण प्राणनाथ को प्रश्न करने के लिये बाध्य कर दिया, पूछने पर स्वप्न का सारा का सारा वृतान्त कह सुनाई मैं, सुनते ही उन्होंने भी ठीक ऐसे ही स्वप्न-संदर्शन की चर्चा चलाई। पारस्परिक हम दोनों की वियोगोद्भूत-वार्ताओं ने विभोर बनाकर प्रातः कालीन-कृत्यों के संपादन में समय का उल्लंघन करा दिया।हाय! आज तो आर्यनन्दन राम अयोध्या प्रस्थान करने की त्वरा से तैयारी में संलग्न हैं न जाने किस-किस दशा के दृश्यों का दर्शन करना पड़ेगा मुझे हाय ! हाय....।

[इतना कहते ही विरह-वेदना की भावी आशंका श्री सिद्धिजी को चेतना-शून्य कर देती है।]

चित्राजी : (सचेत करके) स्वामिनी जू ! सीमातीत भक्तिवन्तों के भव्य- व्यवहार, समस्त-शास्त्र-क्रमादिकों के परे होते हैं तथापि आपकी जैसी प्रणय-प्रलाप-प्रपूर्ण बातों में सकल शास्त्रर्थों का सार-सर्वस्वसंगर्भित रहता है, जो बात वक्ता के संकल्प से प्रयत्न-पूर्वक की जाती है, उसमें प्रायः कोई रस नहीं रहता, इसके विपरीत भावावेश में आकृष्ट-स्वयं को भूलकर, वक्ता जो कुछ बोले वही रसमयी वार्ता होगी, अतएव अज्ञात-दशा में आपके प्रातः कृत्य में काल का अतिक्रमण हो जाना कोई दूषण नहीं अपितु भक्ति का भूषण है। श्री सीताकान्तजू का सियाजू के साथ प्रयाण मिथिला-वासी पशु-पक्षियों और कीट-पतङ्गों को भी अरुचिकर और विरहोत्पादक है, फिर आप जैसी अमानिनी अनुरागिनी के विषय की विरह-व्यथा की कथा क्या कही जाय ?

श्री सिद्धिजी : चित्रे ! ज्ञान-स्वरूप, समस्त श्रेष्ठ-गुण-गणनिलय, श्याम-सुन्दर रघुनन्दन वास्तव में अत्युज्वल-निर्धूम-दिव्य-दीप के समान, तमसा-छत्र-ग्रह-रूपी-संसार में परम प्रकाशित हो रहे हैं या यों कहें कि मानवत्व एवं देवत्व के प्रकाशक समस्त श्रेय-गुण श्रीरामजी का आश्रय लेकर कृतार्थ हो गये। माधुर्यादि काय-सम्पत्तियों से संयुक्त अमृत के समान समस्त प्राणियों के अतिभोग्य होकर भी कमल-लोचन ने कोहवर-कक्ष में अपने लोचनों को खूब खोलकर कहीं भी दृष्टिपात न करते हुये सम्बन्धानुसार अनुभव कर-करके, अपनी इस सरहज को ही अत्यधिक-सम्मान के सिंहासन में बैठाकर आदर किया है अतएव तदग्रहीता दासी भी दया-सिन्धु के दया-बिन्दु से ही स्व-पति के सहित सब विधि उनकी होकर उनके वियोग में अपना अस्तित्व कैसे रख सकेगी ? हाय ! हृदय की धड़कन और प्राण की तड़पन वृद्धि-भाव को प्राप्त होती जा रही है, रोम-रोम में रमे हुये राम के जाने की कटु-कल्पना, कल्पनातीत-शोक के सागर में समाविष्ट कर रही है। हाय ! विरह के वायवीय-वातावरण से चक्कर आ रहा है अरे ! अरे ! आकाश में उड़ती हुई-सी कहाँ जा रही हूँ ? मुझे क्या हो रहा है ? हाय ! लगता है किसी के द्वारा ऊँचे उठाकर भू-भाग के गहरे-गर्त में गिराई जा रही हूँ ! हाय! हाय.....!!

[कहकर श्री सिद्धिजी मूर्छित हो जाती हैं।]

चित्राजी : (सचेत करके) कुँअर-वल्लभे ! आपकी रामानुरक्ति श्रीरामजी को रिझाकर, आपके अधीन बनाने वाली सर्व समर्थ श्रेष्ठ शक्ति है। रघुनन्दन का विश्लेष आपको असह्य है, तो आपका संश्लेष ही सीतावल्लभ के सुख का संयोजक व सम्वर्धक है स्नेह-मूर्ति-श्याल और सरहज के सम्प्रयोग को वे सदा चाहते हैं किन्तु समय का सम्मान करने के कारण, उन्हें अयोध्या जाना आवश्यक और अनिवार्य हो गया है वह भी आपके आनन्द और उल्लास को अत्यधिक-परिवर्द्धित करने के लिये, अतएव आपका, धीरज धरकर, मंगलानुशासन करते हुये प्रमोद बनबिहारी के प्रस्थान की प्रारम्भिक तैयारी में प्रस्तुत हो जाना औचित्य के अनुरूप होगा, यही मेरी प्रार्थना का निष्कर्ष है।

श्री सिद्धिजी : चित्रे ! श्री मिथिलेश-किशोरी तथा कौशल-किशोर के विशिष्ट-विलक्षण वर्णनातीत एवं कल्पनातीत परम तत्व का अमृतोपम-अनुभव, मुझे अहर्निशि आनन्द में आत्मसात किये रहेगा, यह समझ रखी थी मैं किन्तु वह काल

सन्निकट आ गया है, जिसको प्राप्तकर युगल-मूर्ति आज आँखों से ओझल हो जायेंगे। संयोग में जिनका दर्शन करती थी, वियोग में उनका अन्वेषण करूँगी। मेरे नेत्रों को नवल-नागरि नागर का अदर्शन इसलिये अप्रिय लग रहा है कि इनको अपने विषय का अपरिसीमन संप्राप्त होकर पुनः इनसे अदृश हो रहा है, यह मांगलिक-कार्य मनोज्ञ और चिराकांक्षिणी की अभिलाषा का पूर्तिमत स्वरूप है, यह भली-भाँति जानती हूँ किन्तु श्यामसुन्दर के विरह की भावना तथा उसके वृद्धयर्थप्रचुर-सहाय्य-सामग्रियों की समुपलब्धि, उरस्थल की हरी-भरी भूमि को मरुस्थल रूप में, परिवर्तित करके, वहाँ के निवासियों को अन्न-जल के अभाव में क्या से क्या कर देगी ? कुछ समझ नहीं पाती।

चित्राजी : व्याकुलेक्षणे ! विश्व में विषमता, उतार-चढ़ाव और संघर्ष के दिन स्वाभाविक सबके सामने आते रहते हैं किन्तु संयमी और संतुलित चित्तवाले पुरुषों के पुरुषत्व का नितान्त निर्मल-निखार उक्त दुर्दिनों में ही अधिक होता है। यहाँ तो पति-पत्नी का मांगलिक-मिलन उभय-कुल के मंगल के लिये है अस्तु उनकी मंगल-कामना से विरह को वर्धित होने देना नहीं चाहिये। श्री विदेह-पुर से विदेह-वंश-वैजयन्ती विदेह-राज नन्दिनी जू के साथ चतुर-चूड़ामणि, चक्रवर्ति-नन्दन जू का अयोध्या-प्रस्थान करना, आपकी भूतपूर्व-अभिलाषा को साकार बनाने और आपके निगूढ़तम-परम-प्रेम को जगत में अतिशय समुज्वल और प्रकाशित करने के लिये है, जिसमें त्रिभुवन का त्रैकालिक-त्रिकरण-कल्याण प्रतिष्ठित है। प्रभु-प्रेम की पूर्ण प्रक्रिया के साथ प्रेम-रस (राम-रस) को सिद्ध कर लेने पर ही तो स्वर्णाक्षरों में लिखा जाने वाला, आपका स्वर्णार्ध नाम श्री सिद्धि कुँअरिजी पड़ा है।

श्री सिद्धिजी : चित्रे ! तुम क्या कह रही हो ? अक्षय-कीर्ति-कोष किशोरीजू की अकारण-कृपा से ही लौकिक और पारमार्थिक अप्राप्ति की प्राप्ति और प्राप्ति का संरक्षण सर्व-विधि हो रहा है अन्यथा सर्वसाधन-हीन-अकिंचन-अबला का नेह-निकुंज में प्रवेश कहाँ ? प्रेम-सिन्धु के सीकरांश का शुभ-दर्शन पाषाण-हृदय में कैसे संभव हो सकता है। अविवाहित-अवस्था से ही श्री किशोरीजू की मधुर-स्मृति ने, मुझे अपने ननँद-ननदोई के नाम, रूप, लीला, और धाम की ओर आकृष्ट कर आसक्त-मना बना दिया था। जब से मैं मिथिला आई, तब से प्रत्यक्ष परम-पद-स्वरूप उपर्युक्त चारों-तत्वों से मेरा सहज-संश्लेष हो गया था। हाय ! आज वे अनुपम-रूपौदार्य से संयुक्त दृष्ट-चित्ताप-हारी दिव्य-दम्पति, दृष्टि-पथ से दूर हो रहे हैं। हाय ! हाय ! उनके जाने की स्मृति करके, मैं क्यों जी रही हूँ ? हाय ! हृदय ने अपनी कठोरता के आगे वज्र को भी विलज्जित कर दिया। हा ! मेरी लाड़िली ननँद ! हा लाड़िले ननदोई !!

[श्री सिद्धिजी प्रलाप करते करते मूर्छावस्था को प्राप्त हो जाती हैं।]

चित्राजी : (सचेत करके) अर्विन्दाक्षि ! आपका आध्यात्मिक-वैभव विधि को भी विस्मय के बन में बिहार करने के लिए बाध्य करने वाला है अतः आपका अलौकिक-स्नेहवाङ्ग-मनसागोचर है। कुँअर कान्ता की कमनीय-प्रेम-कान्ति, कुँअर की काय-कान्ति से फूट-फूट कर सात्विक-अष्टभावों के रूप में उद्भासित होती है अर्थात् आप श्री के अनुपम- अनुराग ने ही, आपके प्राणनाथ को प्रेम-स्वरूप बना दिया है, यह मेरी निजी मान्यता है। तभी तो श्री राजकिशोरीजू व श्री नरपति-नन्दनजू आपके प्रेम-पाश से

बंधकर अतीत–काल में भी छूटने की कल्पना करना अत्यन्त कटु समझते हैं। उनकी प्रेम–वैचित्र्य की स्थिति, इस बात का पूर्ण प्रमाण है अतएव आप समय का सम्मान करती हुई, धैर्य धारण कर, अपनी ननँद की बिदा में लग जायें जिससे श्रीराम की ज्येति श्रीराम के साथ शोभनीय हो, उनके वामाङ्ग में तपाये हुये सोने के समान आभावाली अविनाशिनी–महालक्ष्मी का अयोध्यावासी दर्शन कर दिव्यातिदिव्य हो जाँय।

श्री सिद्धिजी : चित्रे ! कभी–कभी बिना बुद्धि–विमर्श की बातें क्यों कह डालती हो? मेरे प्राणनाथ के प्रेम–सिन्धु की बिन्दु ने अपने प्रतिबिम्ब को मेरे हृदय–दर्पण में डालकर मुझे प्रेम–प्रकाश से प्रकाशित कर दिया है कि इसके विपरीत इस अबला की नगण्य–स्नेह की नमी ने मेरे जीवन–धन को स्नेही बना दिया है। (कर्ण दबाकर अश्रु–विमोचन करती हुई) सहेली ! ऐसी बातें तुम जब–तब मेरे प्रेम में पागल बनकर ही किया करती हो किन्तु मैं श्रवण करने में असमर्थ हूँ। हाय ! हृदय में यदि सच्चा स्नेह होता तो क्या श्री किशोरीजू की दासियों की तरह मेरी भी तैयारी अयोध्या जाने की न हो जाती ? अहो ! मन्मथ के मन को मंथन करने वाले सुन्दर सलोने श्यामल कुमार ने अपने अप्रतिम–रूप का जादू चलाकर बरबस सबको वश में कर लिया है। सभी अपना सर्वस्व–समर्पण कर चुके हैं किन्तु मेरा मन, मनमोहन में इतना न फंसा, जिससे सर्व–त्याग कर मैं, उनके साथ चली जाऊँ। हाय ! हाय... ! मुझे तो लोक–लाज व कुल की कानि खा रही है अवश्य ही यह बात सर्वथा सत्य होगी, तभी तो श्याम सुन्दर रघुनन्दन ने मुझसे यह कहा है कि लोक–लाज, कुल–कानि की रक्षा करते हुये, तुमसे मैं कभी विलग न होऊँगा, मेरे साथ अयोध्या जाने से, मेरी श्वसुर–पुरी की शोभा न रहेगी। प्रेम की वृद्धि जैसी दूर रहने से होती है वैसी निकट रहने से नहीं होती। चतुर–चूड़ामणि ने ऐसी बहुत सी बातें करके, मुझे मिथिला में रहने के लिए हठात् राजी कर लिया है। हाय ! यह सब दोष मेरा है, मेरे अन्तर मन के जानने वाले अन्तर्यामी मन–मोहन ने मेरे मन की मलिनता से उकता कर, मुझे विरह–वह्नि से ही परिशुद्ध करने का संकल्प किया है। हाय..! क्या करूँ? मेरे नयनाभिराम ननँद ननदोई के प्रस्थान का समय समीप आ गया। हाय रे अभागे हृदय ! तुझ में इतनी सहनशक्ति ! आश्चर्य !! आश्चर्य !!! हाय ! अपना कुछ वश भी नहीं चलता, विरह–रस के कल्लोल में उन्मज्जन–निमज्जन के अतिरिक्त विरही का कोई अन्य प्रयोजन व व्यापार नहीं होता। हाय... ! हाय !!

[कह कर पुनः मूर्छित हो जाती हैं। चित्राजी सचेत करती हैं।]

चित्राजी : कुँअर कान्ते ! कुँअर की आप आत्म–प्रिय आत्मा हैं अतएव आप का स्वभाव जन्य प्रेम–प्रकाश कुँअर की काया में प्रकाशित होता है क्योंकि आत्मा की चेतन–शक्ति से ही शरीर चेष्टा करता है। धृष्टता क्षमा करेंगी, आप और आपके प्राणनाथ में अभेदत्व सिद्ध करने के लिए मैंने उक्त बात कही है, अन्य कोई प्रयोजन नहीं। आप दोनों की दाम्पत्य–लीला का रहस्यार्थ प्रपञ्च का विस्मरण कराकर, श्री किशोरीजी व श्री रामजी महाराज के नाम, रूप, लीला और धाम में तन्मयता प्राप्त कराना है क्योंकि भागवतों की भव्य–भावना प्रपञ्च का लय करके, भावुकों को भगवान में लीन किये बिना नहीं रहती। आप श्री के हार्द–स्नेह–रस का पान करने के लिये रस–स्वरूप राम स्वयं रसिक बने हुये हैं। आपने भी उनके अमानुषेय–पुरुषार्थों को विस्मृति के गर्भ में विलीन कर ऐश्वर्य को

अन्तर्हित कर लिया है। मन में केवल कौशल–किशोर की कमनीय–कैशोर–माधुरी की अभिव्यक्ति रह गई है, जिससे संसार का सर्वभावेन–शमन और युगल–किशोर–किशोरी (ब्रह्मशक्ति) में परमासक्ति सहज समुत्पन्न हो जाना आपके स्वरूपानुरूप अनिवार्य है अस्तु अप्रतिम सुन्दर–सुन्दरी के दर्शन की अभीप्सा एवं जगदेक स्वामि–स्वामिनी के विरह–भय की व्यथा आप श्री के मन को मथे जा रही है, भली–भाँति जानती हूँ तो भी आपको उनकी विदा में संलग्न होने की प्रेरणा देना, मेरा कर्त्तव्य है।

श्री सिद्धिजी : मेरे बज्र–विजेता शुष्क हृदय में प्रेम का स्रोत होना सर्वथा असंभव है। मृत्यु की विभीषिका और मोक्ष की अभीप्सा से मुक्तप्राय–अकिंचन प्राणियों की उरस्थली में ही हरि के हार्दानुग्रह से स्नेह का उदय होना संभव है। हाय ! मुझे तो प्राण बहुत प्रिय लग रहे हैं, तभी तो प्रेमास्पद के प्रयाण–काल का स्मरण करते हुये भी, चतुरता पूर्ण बातें करने में प्राणों को असहिष्णुता का अनुभव नहीं हो रहा है। मैं तो यह कहूँगी कि वास्तव में भावुक–भक्त के हृदय में स्नेह नहीं होता, वह भावनास्पद–भगवान के हृदयाकाश में होता है; सर्व–समर्थ–प्रेमास्पद जब "भक्ति–प्रिय" नाम की सत्यता को समक्ष रखकर तथा स्वतन्त्रता को सर्वथा दूर विसर्जन करके, भक्त–परवशता की मधुरिम–माधुरी का समास्वादन अत्यन्तासक्त होकर करता है, तब उसको स्वरूपस्थ–सुख से विशिष्ट, विलक्षण और अनुपमेय–आनन्द की अनुभूति होती है। अस्तु, जहाँ भक्त की पराधीनता में मन–मोहिनी–मिठास का समनुभव प्रेम–स्वरूप–प्रेमास्पद कर–करके प्रेम–प्रमत्त होने लगता है, वहाँ उसके प्रेम–सरोवर का प्रेम–रस उछलने लगता है और उछल–उछल कर भक्त को प्रेममय उसी प्रकार बना देता है जैसे घी से भरा घड़ा, शिर पर रखकर चलने वाले की देह, को सूर्यताप से पिघल जाने के कारण छलक–छलककर या श्रवित होकर भिगो देता है। हाय ! कभी मेरे हृदय में भुवन–मंगल मन–मोहन रघुनन्दन के सहित श्री किशोरी जी के प्रति असीम–अनुरक्ति उत्पन्न होगी ? हाय ! हाय !! अभी–अभी मेरी लाड़िली ननँद का वियोग हो रहा है और मैं बिना प्रेम के प्रेमिका–सी बातेंकरने में लज्जित नहीं हो रही हूँ। हाय ! कितना कठोर हृदय है मेरा ! हा ! हा किशोरी....

[कहती हुई चेतना हीन हो जाती हैं।]

चित्राजी : (प्रकृतिस्थ करके) प्रेम विग्रहे ! समग्र–रस के निधान रस–स्वरूप रसिकेश्वर श्रीराम को, आपने अपने हार्द–स्नेह–रस के पान करने के लिये सतृष्ण और समुत्सुक बना दिया है, यह आप श्री की विशेषता है। आप दिव्य प्रेम की जीती जागती प्रतिमा हैं। आपकी स्वसम्बन्ध–निष्ठा तथा तद्‌गुणशालिता सहज और सर्वश्रेष्ठ है, हाँ यह बात सत्य है कि प्रेमी यह नहीं जानता कि मैं क्या हूँ और क्या जानता हूँ। प्रेम में अहर्निशि निमग्न रहते हुये भी, उसे आपकी तरह अपने हार्दिक–प्रेम में सदा न्यूनता का ही निदर्शन होता रहता है। आपके अहंहीन–हृद्देश में प्रेम–स्वरूप परमात्मा का एक छत्र–आधिपत्य है वही वहाँ के सर्वतन्त्र–स्वतन्त्र–सम्राट हैं, यह प्रेम का प्राकट्य साक्षात् भगवान का ही प्रकाश है। आप श्री के रोम–रोम से प्रेम की किरणें अपने आप निकल रही हैं। देवि ! आप श्री की चेष्टाओं के माध्यम से, उन्हीं की ललित–ललित प्रेममयी–लीलाओं का स्फुरण होता रहता है। आपके मूर्तिमान–स्नेह ने ही योगियों के रमने के एकमात्र–स्थान सगुण–साकार श्रीमान महात्मा राजीव लोचन–राम को सिद्धि–सदन का आसक्त और अनुरागी बना दिया है, अतएव इस समय अपने में स्नेह के अभाव का दर्शन

कर इतनी अधीरता के आने का अवकाश न दें, जिस तपन से संतप्त हो रही हैं, उससे घबरायें नहीं अन्यथा अचेतन-अवस्था को अपनाकर विदा के समय में श्री किशोरीजू व श्री रामजू का दर्शन न पाकर केवल पछताना ही पल्ले पड़ेगा, चले जाने के पश्चात् प्रकृतिस्थ होने पर अदर्शन का स्मरण अधिक-अधिक अनुताप व उद्वेग उत्पन्न करके कष्ट का अनवरत अनुभव करायेगा।

[इतने में अम्बा सुनैना का संदेश सुनाने हेतु दासी का सिद्धि-सदन में प्रवेश...]

दासी : (साश्रु) स्वामिनीजू की सदा जय हो, सदा जय हो।

(कहकर सादर सप्रेम प्रणाम करती है ।)

श्री सिद्धिजी : (साश्रु गद्‌गद् वाणी में) कहो दासी ! क्या समाचार लाई हो ?

दासी : (साश्रु हिचकियाँ भरती हुई) चारों चक्रवर्ती-कुमार विदा लेने के लिये श्री अम्बाजी के भवन में सम्प्रति विराज रहे हैं; अतएव आप अपनी लाड़िली ननँद व ननदोई का नयन-भर दर्शन करके, उन्हें विदा देने के लिये शीघ्र श्री सुनैना जू के सदन चलें। आप श्री की सासुजी का यह संदेश है।

श्री सिद्धिजी : (रोती हुई शिर पर हाथ रखकर) हाय ! युगल-किशोर के अदर्शन का काल, मुझ अधीर-अबला पर कठोराघात करने के लिये आ गया। हा ! श्याम सुन्दर ! हा ! हृदय-हरण ! हा श्यामे ! हा ! मेरी किशोरी !

[कहकर श्री कुँअर-वल्लभा मूर्छित हो जाती हैं।]

चित्राजी : (उपचार द्वारा मूर्छा-विगत कर, साश्रु) प्रेम-पण्डिते ! श्री नरपति-नन्दनजू सजल-नेत्र, आपसे मिलने की आतुरता लिये हुये, आप की प्रतीक्षा कर रहे हैं इसलिये आपका उनके समीप समय से पहुँच जाना, उन्हें प्रेमोत्पादक व हर्षोत्पादक सिद्ध होगा, जिनके पवित्रतम-मधुर लीलाओं का चिन्तन चारु-चित्ता के चित्त को चुरा रहा है, उनके पुंसामोहन-स्वरूप का दिव्य-दर्शन नेत्रों को कराने के लिये शीघ्र चलना चाहिये। न जाने कब वह स्वर्णिम-समय आयेगा जब सिद्धि-सदन के विस्तृत प्राङ्गण में प्रिया-प्रीतम राशि-राशि सौन्दर्य बिखेरते हुये, मन्थर-गति से चलेंगे और मन-मोहिनी-मन्द-मुसकान एवं दृष्ट-चित्तापहारी-चितवनि से, अपने सौन्दर्य के सुधा-सिन्धु में सानन्द हम सबको निमज्जन करायेंगे। अहा ! सम्पूर्ण सदन की युवतियाँ अपने-अपने भावों के झरोखों से झाँक-झाँककर उस समय अनुराग के रंग में रंग कर अति रंजित हो जायेंगी और निर्निमेष उनके रूप-रस का पान करके प्रमत्त की तरह दृष्टिगोचर होने लगेंगी।

श्री सिद्धिजी : चित्रे ! मन में लग रहा था कि श्री किशोरीजू के प्रस्थान का समय पिछड़ता जाय किन्तु काल किसकी प्रतीक्षा करता है, अब नेत्रों के विषय विश्व-विमोहन राजिव-लोचन राम का वियोग अल्प-समय में ही संभव है। चलो, भद्रे ! शीघ्र चलो। प्राणों के प्रिय अलौकिक-अतिथि का आनन भली-प्रकार अवलोकन कर उसे सदा के लिये, हृदय-भीति पर अंकित कर लें ताकि वह ध्यान की आँखों से भी ओझल न हो जाय।

चित्राजी : चलिये ! आप श्री के उठने की देर है, मैं तो आपका अनुगमन करने को तैयार हूँ।

[श्री सिद्धिजी, चित्राजी के साथ, सुनैना-सदन के लिए प्रस्थान करती हैं।]

पटाक्षेप

....

सप्तत्रिंशः दृश्यः ३७

[सजल-नेत्रा श्री सिद्धिजी श्री सुनैनाजू के सदन में पहुँचकर सिंहासन में बैठे हुये, चारों राजकुमारों को प्रणाम करती हैं, पुनः रोती हुई श्रीरामजी के चरणों में लिपटकर विरह-भय से व्याकुल होकर मूर्छित हो जाती हैं। श्रीरामजी अपने कर-कमल का स्पर्श देकर, चेतना प्रदान करते हैं, किन्तु श्रीधर-कुमारी की अधीरता, उनके मन को मथे जा रही है।]

श्री रामजी पद गाते हैं :

हा ! उर में प्यारी धीर धरो।

आँसुन भरे तुम्हारे नैना, लखि-लखि चित्त न पावहु चैना,

कहा कहौं कछु कान करो।

निरखत पितु अरु श्वसुर समाजा, सकुच विवश मोंहि लागति लाजा,

नयनन मोरे नीर भरो।

हर्षण मम हित स्वस्थ दिखाई, समुझि समय मोंहि देहु बिदाई,

अइहौं बहुरि न विरह डरो।

अवध पयान अवश्यक मोही, रहिके इहाँ न छोड़तेउँ तोही

मोरी सरहज सुखहिं भरो।

श्री रामजी : व्याकुलेक्षणे ! आपकी व्याकुलता मुझे व्याकुल बनाना चाहती है। जो समय और समाज को देखते हुये, मुझे लज्जा और संकोच का विषय बनायेगी इसलिये आप मेरे लिये कुछ तो धैर्य धारण करें।

श्री सिद्धिजी : श्याम सुन्दर ! क्या करूँ विवश हूँ मैं। चाहती थी कि विरह-वह्नि भीतर-भीतर ही सुलगती रहे, उसका धुआँ बाहर निकलकर आपकी आँखों का विषय न बने, किन्तु प्यारे ! किङ्करी किंकर्त्तव्य-विमूढ़ हो गई है। हाय ! इसे अपने प्रियतम का हित और प्रिय भी नहीं सूझ रहा है। मेरे सर्वस्व ! अपनी किङ्करी का अंतिम प्रणाम लेने के लिये यहाँ पधारे हैं। हाय ! हाय !! कहाँ जाऊँ ? क्या करूँ ? मेरा मन तो मन-मोहन के साथ है, शरीर को इस अंधेरे घर में रखकर विरह-व्याल से कैसे कटवाऊँ? हाय ! मेरे प्रीतम ! लो, यह शिर तुम्हारे चरणों में रखा है। अरे ! अरे ! क्या हो रहा है ? स्वप्न तो नहीं है ? नहीं..... नहीं स्वप्न नहीं है। मेरे ननँद को लेकर ननदोई सचमुच आज अयोध्या की प्रजा का रंजन करने के लिये, मिथिला से बिदा लेने आये हैं हाय ! मेरी किशोरी ! हा ! प्यारे कौशल-कुमार ! हाय ! हाय..... !!

[सिद्धिजी पुनः मूर्छित हो जाती हैं। श्री रामजी के सजल-नेत्र उन्हें चेतना प्रदान करते हैं।]

श्री सुनैनाजी : (सिद्धिजी के सचेत होने पर) मेरी हृद-पिण्ड-प्रियतरा-पुत्रवधू! मेरी ओर देखकर धैर्य-धारण करो। असमय समझ वज्र की छाती कर लो। देखो न, तुम्हारी दशा को देखकर, लाड़िली किशोरी भाभी, भाभी कहती हुई हिचकियाँ भरते-भरते श्री सुदर्शनाजी की गोद में अचेतन-सी पड़ी हैं, स्वयं प्रकृतिस्थ होकर उसे सचेत करके वत्स श्रीरामभद्रजू को सौंपने की शीघ्र तैयारी करो, जिससे साँवरे राजकुमार एवं कनकोज्वला श्रीधर-कुमारी की भेंट परस्पर प्रीति का परिवर्धन करे।

श्री सिद्धिजी : (धीरतापूर्वक श्री किशोरीजू को स्पर्श द्वारा सचेत करके, अपने हृदय से लिपटा कर, साश्रु) श्यामे ! अपनी सहज करुण-कृपा की ओर देखकर मेरे आज तक के अपराधों की ओर दृष्टिपात न करेंगी क्योंकि जैसी भी भली-बुरी हूँ, आपकी हूँ, अन्य की नहीं। आपका मंगल हो, मंगल हो, मंगल हो, यही मेरी कामना, यही मेरा सुख, यही मेरा सर्वस्व है। लाड़िली ! यह वियोग मांगलिक है; अस्तु तड़पता हुआ हृदय पुनः दर्शन की आशा से अपने को विदीर्ण नहीं होने दे रहा है। हाय ! कितने कष्ट के अनुभव करने का समय समाज में समुपस्थित है। हाय...

[कहकर झम से पुनः भूमि में निष्चेष्ट गिर जाती हैं। रोती हुई श्री किशोरीजू के उठाने से सचेत होती हैं।]

किशोरीजी : (साश्रु, धीरे से) भाभीजी ! आपके अप्रतिमहार्द- स्नेह को आपकी किशोरी किसी जन्म में न भूलेगी। मेरे बालचापल्य को आप, अपने आनन्द का मूल समझती थीं। हाय ! यह स्नेह जग-दुर्लभ है। हाय ! आज आप जैसी भाभी का वियोग विशेष व्याकुल बना रहा है मुझे ! क्या करूँ? सम्हल नहीं पा रही हूँ ! हा ! भाभी ! हा ! भाभी.....! आपकी प्रेम-प्रणाली के प्रेमात्र से पली हुई आपकी ननँद अब भूखी-भूखी कालक्षेप करेगी।

[किशोरीजू आहें-हिचकियाँ भरती हुई रुदन करते हुए अत्यन्त अधीरता को प्राप्त हो रही हैं।]

[श्री सुनैनाजी, समय का अतिक्रमण न हो इसलिए धैर्य को धारण कर श्री किशोरीजू को लाकर श्री रामजी को सौंपती हैं, पुनः क्रमशः माण्डवीजी, उर्मिला जी, श्रुतिकीर्तिजी को श्री भरतजी, श्री लक्ष्मणजी व श्री शत्रुघ्नजी को सौंप कर कहती हैं.....।]

श्री सुनैनाजी : चारों-कुमारों से मेरी करबद्ध-विनय है कि गंगा के समान पावन एवं उज्जवल कीर्ति की प्रतिमूर्ति, ये मेरी चारों कुमारियाँ अभी भोरी-भारी बालिका हैं, इनके अपराध को आप लोग क्षमा करते रहेंगे। इनके कष्ट को श्रवण करते ही आपकी सासु की श्वास कण्ठ में आ जायेगी, ये मेरी प्राण-संजीवनी हैं, जीवन की ज्योति हैं। आप इनके सर्वस्व हैं, अतएव इनकी सुरक्षा आपके हाथ है पुरुषोत्तम ! आपका अतुलनीय पुरुष-धर्म विश्व-वंदनीय है, आप धर्म के सर्वविधि लक्षणों से सम्पन्न स्वयं मूर्तिमान-धर्म हैं अतः समय-समय पर पत्रिका पठवाते रहेंगे। मिथिला के अपनत्व के चित्र को आप चित्त में चित्रित करके, उसे मन के नेत्रों का विषय बनायें रहेंगे। पुनः-पुनः शीघ्र, शीघ्र समय से आकर दर्शन देते रहेंगे। हाय ! मिथिला अमावस की अंधेरी रैन हो जायेगी। हा ! श्याम सुन्दर का सुमुखार्विन्द अब अदृश्य ही होने वाला है। हाय ! मैं अब युगल-किशोर के

बिना, इस पुरी के कारागार में कालक्षेप करूँगी। हाय ! हाय... ! मेरा सर्वस्व छिना जा रहा है। (श्री किशोरीजू को हृदय से लगाकर) मेरी लाड़िली का लाड़िले लाल के साथ सदा मंगल हो, मंगल हो, मंगल हो। बेटी जाओ....अयोध्या को प्रकाशित करो। पतिव्रत-धर्म की शिक्षा जैसी मुझसे बार-बार तुम्हें मिली है तदनुसार त्रिकरण पति-परमेश्वर की सेवा करके, उभय-कुल की कीर्ति को अमर बनाओ। पति-प्रेम की पराकाष्ठा में पहुँच कर, महाभाव के सुमनों से सदा श्याम सुन्दर रघुनन्दन की पूजा करना। हाय ! मेरी किशोरी! माँ को न भूलना। हाय ! नारी की रचना नारायण ने क्यों की ? हा ! आज मेरी नयन-पुतलियाँ नेत्रों से पृथक हो रही हैं। हाय ! मैं अन्धी हो जाऊँगी। हाय... ! आज से मुझे कौन माँ, माँ कहकर पुकारेगी ? मैं किसे सुन्दर-स्वाद युक्त भोजन अपने अंक में बिठाकर कराऊँगी ? हाय ! हाय !! किसे लोरी गा-गाकर शयन कराऊँगी। हाय ! घर सूना हो गया।

[प्रलाप करती हुई श्री सुनैनाजी, श्रीरामजी के चरणों में लिपट जाती हैं।]

श्रीरामजी : (सजल नेत्रों से) माँ ! माँ !! अरे माँ ? यह क्या कर रही हैं। उठें। उठें। (सचेत करके) आपकी सम्पूर्ण संतान मुझे अपनी आत्मा से अधिक प्रिय है। आप ! चिन्ता की चिनगारी से मत जलें। आपकी अभिलाषा-बल्लरी, पूर्णरूपेण, पल्लवित और पुष्पित होगी। शान्त हो जाँय। (खड़े होकर, कर-बद्ध) अब हमारा प्रणाम स्वीकार कर, जाने की अनुमति और आज्ञा दें, पिताजी प्रतीक्षा में होंगे।

[पुनः प्रणाम कर चारों भाई प्रस्थान करते हैं। उस समय का कारुणिक दृश्य दर्शकों को रुला-रुलाकर, करुणा-सागर में डुबाने लगा। श्री सिद्धिजी रोती हुई चारों भाइयों के चरणों में लिपट-लिपटकर प्रणाम करती हुई...!]

श्री सिद्धिजी : हाय ! मेरे सर्वस्व ! सिद्धि की सिद्धता तो चरण-सेवा ही है। हाय ! उससे मुझे क्यों पृथक किये जा रहे हैं। मेरे मन मोहन ! क्या करूँ? कुछ नहीं सूझता, क्या होने जा रहा है। हाय ! यह श्यामला-सुकुमार-शरीर अब कब दृष्टिगोचर होगा ? हाय ! हाय !! मेरे जीव-जीवन जा रहे हैं किन्तु जीव उनका अनुगमन क्यों नहीं करता? हाय! हाय!

[कहती हुई श्री सिद्धिजी मूर्छित हो जाती हैं। सानुज श्रीरामजी आँखों से ओझल होकर बाहर चले गये। श्री सुनैनाजी, सिद्धिजी को सचेत करके, स्वयं विरह से व्याकुल होकर और-और राज-परिवार की एवं नागरिक-नारियों को लेकर रोती हुई, सानुजा श्री किशोरीजू को द्वार तक पहुँचाने जा रही हैं। करुणा-क्रन्दन हो रहा है। केवल करुणा-रस के सागर ने शेष-रसों के साथ सबको आत्मसात् कर लिया। हा ! लाड़िली ! हा ! लाल ! हा ! किशोरी ! हा राम ! हा ! रघुनन्दन ! हा ! श्यामसुन्दर! कह-कहकर रोने के रव ने दसों-दिशाओं को व्याप्त कर दिया। पशु-पक्षी रो रहे हैं। लतायें रो रही हैं। वृक्ष रो रहे हैं। पाषाण रो रहे हैं, वे पिघलते से प्रतीत हो रहे हैं, उनका स्पर्श द्रव-सा कोमल लग रहा है। पृथ्वी रो-रोंकर दरार खाने लगी, उसमें ऊपर नमी और आर्द्रता आ गई है, अश्रुओं से वह भीगी हुई-सी लग रही है। चारों कुमार व चारों कुमारियाँ रो रही हैं। सम्पूर्ण घरात-बारात विरह से व्याप्त होकर रो रही हैं। सभी जड़-चेतनात्मक जगत अश्रु-विमोचन कर रहा है।]

श्री सिद्धिजी : (बिलखती हुई लाड़िली किशोरी जू को हृदय से लगाकर, मुख देखती हुई....) हा हृदय-वल्लभे ! आपकी भाभी को आपके चन्द्रानन का अदर्शन

अँधेरी–रात्रि के समान अशोभनीय एवं अन्धकार मय बनाकर, हृदय में असह्य–वेदना उत्पन्न कर देगा। हाय ! हृदय फटा जा रहा है....।

[कहकर मूर्छित हो जाती हैं। श्री सुनैनाजी, किशोरी जू का आलिङ्गन–चुम्बन तथा प्यार करते हुए विलख–विलख कर अपना दुख प्रगट करती हैं]

सुनैनाजी : हा मेरे हृदय–कमल की कली ! हा ! सीते ! हाय ! मेरी जीव–जीवनी ! आज अपनी लाड़िली को वज्र–हृदय कर, पर घर भेज रही हूँ। हाय ! यह प्यारा–प्यारा सुन्दर–सुमुखार्विन्द अभी–अभी मेरी आँखों से अलग हो रहा है। हाय ! लाड़िली के आँखों केआँसू अब नहीं देखे जाते। किशोरी के मुख से आह भरा निकला हुआ, अम्बा–अम्बा का शब्द सुन–सुनकर मेरी छाती विदीर्ण हो रही है। हाय ! क्या करूँ ! मेरे पैर आगे नहीं बढ़ रहे हैं, शरीर शिथिल हो रहा है। हाय ! हाय !!

[कहती हुई, श्री सुनैनाजू मूर्छित होकर गिर जाती हैं। भाभी और भैया को अचेतन–अवस्था में देखकर, श्री किशोरीजू अत्यन्त–करुणा–पूर्ण विलाप करने लगती हैं। अन्य स्त्रियाँ पहुँचाने जा रही हैं किन्तु सबकी सब एक–एक करके मूर्छित होकर वसुधा–में बेसुध गिर जाती हैं। श्री विदेहराज–नन्दिनीजी को अकेली अवलोकन कर छद्म–वेष से श्री उमा–रमा और ब्रह्माणी पहुँचाने जाती हैं।]

उमाजी : (साश्रु) श्री सिन्धु–सुते ! आश्चर्य ! आश्चर्य !! लोक में साधारण–असाधारण किसी की लड़की की बिदा में ऐसा दृश्य न उपस्थित हुआ आज तक कि कन्या पति–घर जाते समय अकेली ही जाकर पालकी पर चढ़े ! हाय ! कितने कष्ट का विषय है। पुरजन–परिजन की नारियों समेत श्री सुनैना माँ तथा श्री सिद्धि कुँअरि जी, विरह–सागर में निमग्न हो गई हैं, विस्मृति के अंक में आसीन हैं। हाय ! यद्यपि अधीरता हम लोगों को भी वरण कर रही है किन्तु साहस से काम लेकर, हम तीनों श्री जनकराज–तनयाजू को समझा–बुझाकर शीबिका–रोहण करा दें। ठीक है न ?

रमाजी : (साश्रु) श्री गिरिराज–नन्दिनी जी ! पित्रालय से श्वसुरालय जाने में कन्या को तथा सपरिवार उसके माता–पिता को कितना वियोग–जनित–दुसह–दुख सहना पड़ता है, यह अनुभव हम लोगों को अविदित नहीं है किन्तु आज का दृश्य तो अपने अनुभव से अवश्य अतीत है। हाय ! क्या हो रहा है ? धैर्य साथ दे, तो अवश्य आज श्री विदेह–वंश–वैजयन्ती की सेवा के सुअवसर से नहीं चूकना चाहिये। मुझे तो अपनी दशा देखते हुये, यही लग रहा है कि श्री किशोरीजी का स्पर्श करते ही प्रकृतिस्थ न रह सकूँगी। हाय ! सीता की कान्ति का कणांश दर्शन कर अहं विलीन हो गया और उनके अश्रु भरे सुन्दर–सुलोचनों को देखकर, विरह के भय से ममकार की वृत्ति विनष्ट हो गई। अरे ! अरे ! मैं यह नहीं जानती कि मैं कौन हूँ, कहाँ से आई हूँ, कहाँ जाना है, क्या करना है; यदि कुछ जानती हूँ तो यह जानती हूँ कि मैं जानकी हूँ।

ब्रह्माणीजी : देवाधिदेव की देवियों ! लोकातीत–दृश्य का दर्शन करके जब हम लोगों के पति–परमेश्वर आकाश से अश्रु–विमोचन कर रहे हैं, तब किसी जड़ चेतन जीव को समयानुसार अनुवर्तन न करना असंभव और अशक्य है। हमारे अंग–प्रत्यंग कंपित हो रहे हैं, दृश्य को देख–देखकर नेत्रों के पनालों का प्रवहन अप्रवाहित नहीं हो रहा है किन्तु कर्त्तव्य को अग्रसर करके श्री किशोरीजू के समीप अवश्य चलना चाहिये, भविष्य को सर्वज्ञ सर्वेश्वर जाने।

[उमा, रमा, ब्रह्माणी अपनी सेव्या की सेवा में शीघ्र समुपस्थित होती हैं। तीनों श्री किशोरीजू को हृदय में लेकर भेंटती हैं। पुनः उन्हें पकड़कर पहुँचाने चलती हैं किन्तु विरह-वह्नि की आँच से अत्यन्त घबड़ा कर हा! सीते ! हा ! सीते ! कहती हुई गगन से गिरी तीन-तारिकाओं के समान पृथ्वी में बेसुध गिरकर तीनों देवियाँ दृष्टि-गोचर होने लगती हैं]

[मानवी रूप से भू देवी का प्रवेश]

भूदेवी : (साश्रु) हा ! भूमि के रहते भूमिजा को अकेली अपने से पालकी में चढ़ना पड़े। हाय ! हाय !! पुत्रि का वियोग जननी के लिये कितना कटु और असह्य है। किशोरी का विलाप सुनकर हृदय के टुकड़े-टुकड़े हो रहे हैं किन्तु क्या करूँ? पहुँचाने जाना है।

[श्री किशोरीजी के पास स्नेह-कातरा पृथ्वी आती है और बाँह पकड़कर आगे चलने का प्रयास करती हैं।]

पुनः भूदेवी : वत्से ! अधीर मत हो, यह संसार का सहज स्वभाव है कि संयोग के सुपुष्प में वियोग के काँटे लगते ही हैं। अहो ! तुम्हारे अश्रु-पूर्ण-मुख की स्मृति, मुझे सचेत रखकर तुम्हें पहुँचाने न देगी क्या ? हाय ! वियोग का बवंडर मुझे अवनि से उठाकर आकाश में उड़ायेगा क्या ? हाय ! हाय !! समझाने का स्वाँग तो भर रही हूँ किन्तु स्वयं नहीं समझ रही हूँ ! हा ! भूमिजे हा ! धरणि सुते ! धीरज कहाँ चला जा रहा है। हा ! भूप-नन्दिनी ! हा ! भूपतिकन्यके। हाय ! हाय !!

[कहकर पृथ्वी देवी अचेत होकर, श्री पृथ्वीपति जनक जी के प्राङ्गण में प्रलाप करती हुई गिर गई। श्री लक्ष्मीनिधिजी का प्रवेश]

श्री लक्ष्मीनिधिजी : (स्वगत, रोते हुये...) हाय ! हाय !! इससे अधिक वेदना का महान मूल मेरे लिये कौन हो सकता है ? हाय ! आज श्री किशोरीजू मातृ-हीन, परिवार-हीन, अनाथ-बालिका की तरह आकुल-व्याकुल होकर, अश्रु विमोचन कर रही हैं। हाय ! उन्हें पालकी पर बैठाने के लिये, परिजन-पुरजन की एक स्त्री को भी करुणा की कटक ने स्मृति-शून्य किये बिना नहीं छोड़ा। प्रयत्न करने पर भी अम्बाजी व उनकी पुत्र-वधू प्रकृतिस्थ नहीं हो रही हैं। हाय ! मैं ही लली को पहुँचाने का प्रयास करूँ।

[श्री लक्ष्मीनिधिजी, श्री किशोरीजू के पास जाते हैं। श्री लाड़िलीजू रोती हुई, भैया-भैया कह-कहकर अपने भ्राता की कटि को पकड़कर लिपट जाती हैं। कुँअर अपने अंक में लेकर बिलखने लगते हैं।]

श्री किशोरीजू : हाय ! भैया ! हाय ! भैया ! अरी ! भाभी ! अरी भाभी ! हाय मेरी अम्बा ! ओ ! अम्बा। हाय ! दाऊ ! हाय ! दाऊ ! हाय... ! (स्वगत) हाय ! मेरे विरह से मेरी मातायें, भाभी व पुरिजन-पुरजन की नारियाँ सभी मूर्छित पड़ी हैं। हाय ! किसी का मुख नहीं देख रही हूँ। हाय ! अकेली मुझ अभागिनी का हृदय बज्र को भी विलज्जित करने वाला है। हाय ! हाय !! मुझ जैसा समय, श्वसुर-गृह जाते समय किसी दीन-हीन अनाथ-लड़की को भी देखने को न मिला होगा। हाय ! क्या करूँ? स्मृति-हीन भी नहीं हो रही हूँ। हाय ! हाय !! मेरे साथ जाने वाली अनुजाओं को भी अत्यन्त कष्ट हो रहा है।

प्रकट : हाय ! मेरे भैया ! हाय ! हाय !! आपकी गोद अब मुझे कब मिलेगी ? हाय ! हाय ! भैया !! मुझे भुलायेंगे नहीं। शीघ्रातिशीघ्र समय में मुझे मिथिला बुलाकर अपने स्वजनों के प्रेम से मेरी परिपुष्टि करने की कृपा करेंगे। हाय ! मेरे भैया...।

[श्री किशोरीजू का प्रलाप सुनकर श्री लक्ष्मीनिधिजी स्वयं प्रलाप करते हुये, विरह-व्याधि से विस्मृति की शय्या पर गिर गये। श्री मिथिलेश जू का अपने भ्राता कुशध्वज के साथ प्रवेश...लाड़िली पुत्री की विरहजनित शोकातुर अवस्था को देखकर वात्सल्य-भाव से...]

श्री मिथिलेशजी : हाय ! हाय !! मेरी लाड़िली ! हाय ! मेरी प्राण-संजीवनी ! आज तुम एक अनाथिनी-बाला से गई बीती हो गई। हाय ! विधि का विधान कैसा ? हाय... ! हाय !! कष्ट ! महाकष्ट क्या देख रहा हूँ यह ? हाय ! श्वसुर-गृह जाते समय मेरी प्राण-प्रिय-पुत्रिका को कोई स्त्री पालकी में चढ़ाने के लिये अमूर्छित नहीं शेष है। हाय ! हाय ...!!

[कहकर श्री किशोरीजू को हृदय से लगा लेते हैं स्वयं रोते हुये लाड़िली के मुख के आँसुओं को पोंछते हैं, विवेक साथ नहीं दे रहा है, धैर्य खो रहा है : हा सीते ! हा ! सीते ! कहकर प्रलाप करने लगे।]

[श्री निमिवंश के सद्गुरु श्री याज्ञवल्क्यजी का प्रवेश]

श्री याज्ञवल्क्यजी : (स्वगत) मेरे शिष्यों में सर्वश्रेष्ठ श्री सीरध्वजजी महाराज अपने समय के ज्ञानियों में शिरोमणि ब्रह्म-विद-वरिष्ठ हैं; जिनकी दृष्टि में सारा दृश्य-जगत मिथ्या है, वे प्रवृत्ति-मार्ग के योगाचार्य अपनी अयोनिजा पुत्री के विरह-सागर में अस्त हो रहे हैं। (प्रकट...) निमिकुल-नरेश ! धैर्य धारण करें, समय का सम्मान करें, शुभ-मुहूर्त में ही आपकी आत्मजा का प्रस्थान अयोध्या को होना चाहिये। करुणा के सागर में सभी प्राणि-समुदाय संलीन है, अतएव आपको सबकी भाँति उसमें डूबने से अपने को बचाना चाहिये। उठें, उठें। लली को लेकर पालकी पर चढ़ायें, ताकि शुभ-लग्न का अतिक्रमण न हो। आपके ज्ञान-सूर्य केअस्त हो जाने से अंधेरी-रात ने सबको नेत्र-हीन बना दिया है अस्तु अब भी विवेक का अवलम्बन लेकर समय का सत्कार करें।

श्री मिथिलेशजी : (धैर्य धारण कर) हाय ! श्री आचार्य-चरण को बड़ा कष्ट दिया। मुने ! क्या कहूँ ? किशोरी के वियोग ने मुझे भी बिना मारे न छोड़ा। हाय ! पूर्वजों से अर्जित ज्ञान की गठरी मुझ से कहीं गिर गई। पुत्रिका के स्नेह ने हृदय के राज्य में अपना अकंटक-अधिकार कर लिया है। आपकी आज्ञा शिरोधार्य है। हाय.... ! कैसा यह अवसर आ गया है। आज पिता अपनी पुत्री को पालकी में चढ़ा रहा है, श्वसुरालय जाने के लिये। हाय ! कष्ट ! महाकष्ट !!

[रोती हुई श्री किशोरीजी को, धैर्य धारणकर श्री मिथिलेशजी महाराज शुभ-लग्न समझकर, पालकी में चढ़ा देते हैं, उसी प्रकार माण्डवीजी, उर्मिलाजी और श्रुतिकीर्तिजी को भी पालकी पर बैठाते हैं; तदुनन्तर साथ में जाने वाली सखी-सहेलियों और दासियों को शिबिका पर चढ़ाते हैं। श्री मधुर-दास भी अलग-अलग पालकियों पर चढ़ा दिये जाते हैं। श्री किशोरीजी की पालकी उठते ही नैपथ्य में रोने का कोलाहल होता है। कुबेर और इन्द्र की विभूति को विलज्जित करने वाला दाइज, श्री विदेहजी महाराज देते हैं। श्री किशोरीजी के सर्व-कालीन, सर्व-सुख-सुविधा के लिये सर्व-वस्तुओं की राशि-राशि अयोध्या भेजी जा रही है। पुनः पुर-वासियों के साथ श्री जनकजी महाराज व श्री लक्ष्मीनिधिजी

(प्रकृतिस्थ होकर) श्री चक्रवर्ती दशरथजी महाराज को पहुँचाने जाते हैं। चक्रवर्तीजी ब्राह्मण, याचक सूत, मागध, बन्दीजन, नाऊ, बारी इत्यादि को दान-मान देकर परम संतुष्ट कर लौटा देते हैं। दूर जाने पर हठात् सादर मिलकर श्री विदेहजी महाराज को पुत्र सहित श्री चक्रवर्ती जी वापस लौट जाने के लिये कहते हैं। श्री जनकजी महाराज अपने जामाता-जनों से, ऋषियों-मुनियों से और चक्रवर्तीजी सहित सभी रघुवंशियों से सनम्र, विनय-भाव, प्रणामादि के द्वारा मिलकर, सपुत्र पुर में प्रवेश करते हैं।]

पटाक्षेप

....

अष्ट-त्रिंशः दृश्यः ३८

[मूर्छित श्री सिद्धि कुमारी जी को उनकी सखियाँ और दासियाँ प्रकृतिस्थ होकर, सिद्धि-सदन में लाकर शैय्या में पौढ़ा देती हैं और उपचार के द्वारा, उन्हें सचेत करने का साधन करती हैं। दूसरे दिन संध्या के समय उनको अर्ध चेतनावस्था की प्राप्ति होती है। चित्त किशोरीजी के साथ लगा रहने के कारण उसमें, उनसे सम्बन्धित लीलाओं का दर्शन सिद्धिजी को होने लगता है।]

श्री सिद्धिजी : श्री किशोरीजू ! मैं आपके साथ अमृत-धाम अयोध्या आ गई, अच्छा हुआ न ? अहा ! अपने अंक में आरोपित कर अपनी प्राण-प्रियतमा को प्यार कर रही हूँ मैं। आप श्री के बिना मिथिला में इस आनन्द-सिन्धु का सीकरांश, अन्वेषण करने पर भी दुर्लभ था। आप जहाँ हैं, वहाँ ही सर्व-सुविधायें सुलभ होकर आत्मा को अमर बनाने में प्रयत्नशील हो जाती हैं।

श्री सिद्धि मुख से श्री किशोरीजी : भाभीजी ! आपका अत्र पदार्पण करना अपने ननँद के प्रति किये गये, हार्द-स्नेह के आदर्श-औदार्य का प्रत्यक्ष प्रमाण है। भाभी ने दुस्त्यज-आर्य-पथ का परित्याग तथा लोक-लाज कुल-कानि का विसर्जन कर प्रेम-पथ का पूर्ण-परिशोधन ही नहीं किया अपितु प्रेम-देव के व्यक्ताव्यक्त रूप की वास्तविक प्राप्ति करके, प्रेमास्पद को अपने आधीन कर लिया है, अपना बना लिया है तथा उनके साथ मदीयत्व और तदीयत्व-भाव का सुन्दर-सामञ्जस्य स्वीकार करके प्रेमिकाओं की पंक्ति में आस्तिकाग्रगण्या हो गई हैं। आप श्री को चुनकर प्रेम का अधिष्ठातृ-देवता आपको प्रेम-राज्य के सर्वाराध्यसिंहासन में संप्रतिष्ठित कर स्वयं प्रेम-विभोर बना हुआ, भाभी के आगे भाव-पूर्ण-नृत्य करने में ही परमानन्द की अनुभूति करता है। भाभीजी का साकेत में सम्प्रवेश मुझे अपनी आत्मा में रमण करने के आनन्द से अत्यधिक-सुख-संवर्धन करने वाला है। सर्व-समय-आनन्द ! सर्व-ओर-आनन्द !! सर्वावस्थाओं में आनन्द ! आनन्द ! आनन्द !!

श्री सिद्धिजी : श्री किशोरीजू ! आप श्री के बड़े भ्राता अपनी अनुजा के विरह-वह्नि की दाह से दग्ध हुये जाते होंगे। हाय ! वे तो किसी कार्य वश आपको

अल्प-समय के लिये छोड़कर कहीं जाते तो अति अधीर हो जाते थे; आपके बिना उन्हें अन्न-जल ग्रहण करना दुष्कर हो जाता था। हाय ! हाय !! आपकी स्मृति उन्हें विस्मृति में विलीन कर देती होगी। हाय ! मेरे द्वारा किया हुआ, आपकी कीर्ति का कीर्तन प्राणनाथ के प्राणों को प्रसन्न और प्रफुल्लित बना देता था किन्तु मैं भी उन्हें शोक-सागर में निमग्न छोड़कर स्वार्थ-वश यहाँ चली आई। हाय ! विरह की व्याधि ने मेरी बुद्धि में उत्तम-विमर्श का स्थान न रहने देकर किंकर्तव्य-विमूढ़ बना दिया। हाय ! हाय !! अपने प्रति किये गये, उनके अप्रतिम-स्नेह-पूर्ण-प्यार को मैं बिल्कुल विस्मरण कर गई। हाय ! हाय !! कितनी क्रूर और कृतघ्ना-नारी हूँ मैं ! हाय ! जो स्मृति अभी आई, वह पहले ही क्यों नहीं आई ? हाय ! हाय !! श्री किशोरीजू क्या करूँ; मैंने तो अपना सर्वनाश अपने हाथों कर लिया। अन्य-प्रयोजन से हीन कोई अनन्य प्रेमी, जो प्रेमास्पद के सुख को ही स्वसुख समझता हो, वह तदीय आश्रयत्व का अपमान कभी कर सकता है ? नहीं.... नहीं.... ! वह तदीय-शेषत्व, भोगत्व और रक्षकत्व की भावना का परित्याग और तदाश्रित-विरोधि-कार्य, अवहेलना पूर्वक कभी नहीं कर सकता है। हाय ! हाय !! श्रीराज-नन्दिनीजू तथा श्रीराज-नन्दनजू के प्राण-प्रिय-सखा श्री मिथिलेश-किशोर की पद-छाया में न रहकर, मैंने केवल श्री किशोरीजू के परम-भागवत-भ्राता का ही अपचार नहीं किया अपितु श्री सीतायुत श्री रामभद्रजू का असह्य-अपचार किया है। हाय ! हाय!! प्राणनाथ के कैंकर्य को मैंने क्यों छोड़ दिया ? हाय ! उनको अपनी जीवनी-संगिनी के बिना कितना कष्ट होगा। हाय ! हाय !! वे विरह-वेदना में बेसुध तड़पते होंगे। हाय ! उन्हें वहाँ आज कुछ कहकर, धैर्य बँधाने वाला कोई न होगा। हाय... ! इस अपचार से श्री किशोरी व श्रीरामजी भी मुझे छोड़ देंगे। हाय ! हाय !! कहीं की न रही मैं ! हाय ! मेरे हृदय के शत-शत् टुकड़े क्यों नहीं हो जाते। प्राणनाथ के प्राण बिना जल के मीन की तरह ही नहीं अपितु अधिकाधिक तलफते होंगे। हाय ! हरि-यश-मिश्रित-वचन-वारि का सिंचन करके, उन्हें किंचित सुख न दे सकी मैं ! हाय ! हाय !! हृदय कितना कठोर है, प्राण-धन के बिना, मैं प्राण की परम गरीबिनी होते हुये भी, प्राण को क्यों धारण किये, धनी के समान स्वाँग कर रही हूँ ? हाय ! हाय..... !! कष्ट ! महाकष्ट !!

[कहकर छाती और शिर पर पाणि-प्रहार कर-करके, रोती हुई मूर्छित हो जाती हैं; पुनः कुछ देर में अर्ध-चेतना से युक्त स्थिति में....]

सिद्धि मुख से श्री किशोरीजी : भाभीजी ! आप इतनी अधीर क्यों हो रही हैं। आपका तदनुराग तथा तदीयत्वानुराग चरम-सीमा को संप्राप्त हो गया है; अतएव आपका प्रेम-वैचित्र्य, प्रेम-वैलक्षण्य और प्रेम-परत्व परमात्मा के अतिरिक्त, किसी के ज्ञान का विषय नहीं रह गया। आप चिन्ता न करें। भैया अयोध्या ही में हैं, आप चलकर अपने ननदोई के समीप, उन्हें परस्पर प्रेमालाप करते हुये दर्शन कर सकती हैं। उनके यहाँ आने का ज्ञान न होने से ही, ऐसी स्थिति का आलिङ्गन आपको करना पड़ा है। उठें, उठें। अभी श्याल-भाम की त्रिभुवन-मोहनी-मधुर-मूर्ति का दिव्य दर्शन कराती हूँ मैं, जो परस्पर की भाव-भंगिमा एवं आदर्श-स्नेह के, स्नेह से एक दूसरे की जीवन-ज्योति को जीवित कर रहे हैं।

श्री सिद्धिजी : अच्छा ! आपके भैया भी श्री अवध धाम आगये हैं, किशोरीजू? तब तो आनन्द ! अत्यधिक-आनन्द ! पूर्ण-परमानन्द ! संप्राप्त हो गया। अहा ! अपने प्राणनाथ के साथ साकेत में सन्निवास करते हुये, अपने श्रेयेश्वर श्री सीतारामजी का

सर्व-विधि-कैंकर्य कर-करके, हम दोनों का युगल-मूर्तियों के सुख-संवर्धन के लिये उपयोग होगा। अहा! इससे अधिक कोई कृत्य नहीं, कोई पुरुषार्थ नहीं और कोई आनन्द नहीं। आपने अमृतोपम-संदेश देकर, मुझे जीवन-दान दिया है; अतएव कृतज्ञता प्रकट करने के लिये, मेरे पास कुछ न पाकर अत्यन्त उदार-स्वभाव वाली-कृपालुनी श्री सियाजू अपनी भाभी के एक प्रणाम ही से संतुष्ट हों। अच्छा, अब शीघ्र चलें, मुझे युगल-नरपति-कुमारों का दर्शन करा दें।

सिद्धि मुख से श्री किशोरीजू : अच्छा ! अभी चलें। अपने इष्ट-दर्शन का परम-लाभ लोचनों को देकर संतुष्ट करें।

[सिद्धिजी पलंग से उठकर एक-दो पैर चलकर चक्कर आने से गिर जाती हैं।]

श्री सिद्धिजी : अहा हा ! मदन की मदन, मन-मोहिनी श्याल-भाम की भावनास्पद-अनुपम-अनाख्येय-जोड़ी, आनन्दमय-अयोध्या में विस्तीर्ण-विलास से युक्त विलसित हो रही है। अहा हा.... ! प्रेमी-प्रेमास्पद परस्पर चन्द्र-चकोर बने हुये, दोनों अपनी प्रेम-किरणों से प्रेम का प्रकाश दे रहे हैं। एक-एक की अभिव्यक्ति और रहस्यमयी रीझ की धन्य है, मैं तो कृत कृत्य हो गई, किशोरीजू ! विस्तृत-वसुन्धरा में अनंत-आकाश के तले असमोर्ध्व-युगल-मूर्तियों का दर्शन, स्पर्शन, जीव को आपकी अहैतुकी कृपा के बिना करोड़ों-कल्पों के साधन व प्रयास से सुलभ नहीं हो सकता। मेरा अनन्तशः प्रणाम युगल-मूर्तियों के पाद-पद्मों में है। अहो ! नयनाभिरामीय-युगल कुमारों का आदर्श एवं अलौकिक-प्रेम द्रष्टा के चित्त से दृश्य को अदृश्य किये बिना कदापि नहीं रहता है।

[युगल कुमार समीप ही हैं, इस भाव से प्रणाम करने के लिये उठती हैं किन्तु पुनः मूर्छित होकर गिर जाती हैं]

चित्राजी : (उपचार द्वारा अर्ध-चेतनावस्था होने पर) हे विरह-वन-विहारिणीजू ! आप क्या-क्या प्रलाप युक्त बातें कर रही हैं; आप श्री को अपनेपन का ज्ञान नहीं, निवास-स्थान का ज्ञान नहीं और हम सब लोगों की उपस्थिति-ज्ञान से भी विहीन होकर प्रबोध देने पर भी प्रबुद्ध नहीं हो रही हैं। आप अप्राकृत-देश में रहकर प्राकृतिक-कर्ण, नेत्र, नासिका, रसना और त्वक-इन्द्रिय से अप्राकृत वाणी का श्रवण, दृश्य का दर्शन, गंध का घ्राण, रस का आस्वादन और अप्राकृतिक-स्पर्श का ही आनन्द ले रही हैं। उस अपार-संवित-सुख-सागर में संलीन होकर भी, आपके स्वभावानुसार हम सब सखियों को प्राकृतिक देश में परिभ्रमण करना आपको कैसे सह्य हो रहा है ? आप प्रकृतिस्थ होकर, हम सब को भी उस आनन्द का अनुभव कराने की कृपा करें।

श्री सिद्धिजी : आप कौन हैं ?

चित्राजी : प्रेम-प्रदीप्तिते ! मैं चित्रा नाम्नी आप श्री की अंगभूता सहचरी हूँ।

श्री सिद्धिजी : कहाँ से आई हैं ?

चित्राजी : आप श्री के साथ-साथ मिथिला में रह रही हूँ।

श्री सिद्धिजी : क्या कर रही हैं ?

चित्राजी : सहचरित्व का संरक्षण कर रही हूँ।

श्री सिद्धिजी : मुझसे आपका क्या प्रयोजन है ?

चित्राजी : आप श्री के मुख-कमल का विकसित-दर्शन करना दासी का एकमात्र कार्य है।

श्री सिद्धिजी : अरी मैं कौन हूँ ?

चित्राजी : आप ही तो हमारी स्वामिनी श्री सिद्धि कुँअरि हैं।

श्री सिद्धिजी : कौन ? सिद्धि कुँअरि हूँ मैं ?

चित्राजी : बिड़ावल-नगरी के अधीश्वर श्री श्रीधर महाराज की पुत्री तथा निमिकुल-नरेश श्री सीरध्वज महाराज की पुत्र-वधू हैं, आप कुँअर-कान्ते !

श्री सिद्धिजी : मैं कहाँ हूँ और क्या कर रही हूँ ?

चित्राजी : स्मृति-शून्ये ! आप श्री मिथिला-महल के प्राङ्गण में पड़ी हुई, प्रलाप कर रही हैं।

श्री सिद्धिजी : क्यों प्रलाप कर रही हूँ ?

चित्राजी : आपकी ननँद का आपसे वियोग हो गया है।

श्री सिद्धिजी : कौन ननँद !

चित्राजी : हे विरह-व्याकुले ! आपकी प्रियतमा श्री सीता नाम्नी ननँद हैं, जिनके आश्रय में सभी संसार वर्तमान है, जिनका आश्रय ग्रहण करने की चराचर प्राणि मात्र की अभिलाषा है; ऐसी सबकी लक्ष्य भूता ललित किशोरी का वियोग आपको प्राप्त हुआ है।

श्री सिद्धिजी : वियोग होने का कारण क्या है ? चित्रे !

चित्राजी : श्री चक्रवर्ति-कुमार श्री रामजी के साथ विवाह हो जाने के पश्चात् आपकी ननँद का अपने श्वसुरालय-अवधधाम चली जाना ही आप श्री के हृदय में विरह-वह्नि के वार्धक्य का हेतु है स्वामिनीजू !

श्री सिद्धिजी : अरी सहेली ! अमृतार्णव-सम्भूता-कमलिनी-किशोरी-सीता सचमुच यहाँ नहीं हैं ? जिनके रमणीय-माधुर्य-महोदधि-सौन्दर्य-सार का दर्शन करने के लिये ही दृक-शक्ति, दृक-शक्ति के रूप में परिणत हुई है। अहो ! यदि यहाँ उनका अदर्शन है तो मुझे वहाँ ले चलो जहाँ उनका दर्शन सर्व-भाँति सहज सुलभ हो।

चित्राजी : स्मृति-शून्ये! वह कौशल-किशोर के साथ, कौशल-पुरी पधार गई हैं, विवाह के पश्चात् विवाहिता-पत्नी को पति-गृह जाना, आर्यनारी का, आर्य-संस्कृति की सनातन परिपाटी के अनुरूप है।

श्री सिद्धिजी : हा ! सीते ! हा ! जनकात्मजे ! हा.... ! मैं अपनी अमृतमयी-ननँद के बिना क्यों जी रही हूँ। हाय..... ! हाय....... ! वियोगाग्नि हृदय-भवन में प्रदीप्त होकर मुझे जलाये जा रही है, क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? जलने से बचना अब असाध्य है। हाय.... ! सीते ! सीते ! आपके अदर्शन से मेरे प्राण निष्क्रमण ही करना चाहते हैं....हा...हाय... !

[श्री सिद्धिजी पुनः मूर्छावस्था में स्थित हो गईं। चित्राजी अनेक-अनेक उपचार के द्वारा उन्हें प्रकृतिस्थ करती हैं।]

चित्राजी : प्रेम-विग्रहे धैर्य धारण करें ! श्री किशोरीजी सहित श्रीरामजी के रूप, गुण और स्वभाव का कीर्तन स्वयं सुनाकर तथा हम सब सखियों से श्रवण कर-करके परस्पर परिकर-वृन्द को आनन्द का आदान-प्रदान करें।

श्री सिद्धिजी : अच्छा, चित्रे ! मेरे इष्ट-युगल-मूर्तियों की कीर्ति की कीर्तन-सुधा, मेरे मृत-प्राय-कर्णों में उड़ेल दो ताकि मैं अमरता का अनुभव करने लगूँ।

चित्राजी : कीर्तन प्रिये ! मनीषियों की मान्यता है कि एक ही अमल-अद्वितीय-परमार्थ-तत्व, चित-शक्ति की वृत्ति के भेद से महासार प्रेम के नाम से अनादि-काल से पति-पत्नी रूप दो भागों में विभाजित होकर युगल-स्वरूप से स्वधाम में सर्वदा विराजमान है। एक षड़ैश्वर्य सम्पन्न सच्चिदानन्दात्मक है, दूसरा संधिनी, सम्वित् और अह्लादिनी-नामक त्रिशक्तियों से समन्वित सच्चिदानन्दात्मक है। प्रथम तत्व को सर्वेश्वर स्वरूप राम कहते हैं, दूसरे को भक्ति-स्वरूपिणी सीता कहते हैं। पुनः वही सीता-तत्व, प्रेम-तत्व के रूप में भक्तों के भावानुसार, उनके हृदय में प्रकट होकर, पंचरसों के माध्यम से ब्रह्म-रस का रसास्वादन करता है और कभी राम-तत्व ही प्रेम-स्वरूप बनकर, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर-रस के माध्यम से परमाह्लादिनी सीता-रस का आस्वादन करता है। इस प्रकार विभाव, अनुभव द्वारा स्वयं रस-स्वरूप बनकर श्री सीताराम-युगल-परम-तत्व, परस्पर विषय और आश्रय बनकर रसास्वाद के संवर्धन हेतु; रीति और विपरीत-क्रिया को अपनाकर रसमयी लीला करते रहते हैं तथा अपने असमोर्ध्व-माधुर्य की माधुरी का अनुभव-जन्य आनन्द देने के लिये भक्तों के सामने संयोग और वियोगावस्था को अपनाते रहते हैं। वही आपके ननदोई और ननँद हैं, जो अपनी अनाख्येय लीला के माध्यम से आपको अपने माधुर्य-रस का पान कराने के लिये दिव्य धाम से धराधाम में अवतीर्ण हुये हैं।

[चित्राजी, अपनी स्वामिनीजू को प्रिया-प्रियतम की कीर्ति से संयुक्त एक पद सुनाती हैं।]

चित्रा : गीत.......बने परस्पर चन्द्र - चकोर।
जनक - लली श्री दशरथ - नन्दन, दोउ कमल दोउ भौंर।
दोउ रस-रूप प्रेम की प्रतिमा, दोउ रसिक सिर मौर।
दोउ इक-इक के बनि मन - मोहक, सुन्दर श्यामल-गौर।
वशी किये दोउ एक एक कहँ, मारि दृगन की कोर।
कोहवर - कुंज केलि में पागे, दोउ - दोउ के चित चोर।
सेवित सिद्धि-करन ते नित-नित, रस वर्षत रस -बोर।
हँसि-हँसि हृदय-हरण हठि हर्षण, हर लिय हियरा मोर।

[चित्राजी के द्वारा पद सुनकर सिद्धिजी प्रेम-विभोर होकर पुनः निश्चेष्ट हो जाती हैं। उपचार द्वारा प्रकृतिस्थ कर...]

चित्राजी : (वार्तिक) विरहेक्षणे ! महामेरु के समान महिमावान, नृपति किशोर-किशोरी की कैशोर्य-क्रीड़ा अनुपम और असमोर्ध्व होगी जो कौशलपुरी के केलि-कुंजों में ही विकास-भाव को प्राप्त होकर, अपने प्रसार और प्रभाव से परिकरों को प्रभावित कर सकने में सर्व भावेन समर्थ हो सकती है। मिथिला-महल के संकुचित-

सरोवर में उक्त–दम्पति की, नौका–बिहार की नित्य–नवलीलाओं का मनोज्ञ और मनमानी होना कैसे संभव हो सकता है, स्वामिनीजू ! मन–मोहन की मन–मोहिनी मधुर–लीला, आप दम्पति के आनन्द–सिन्धु में अधिकाधिक आन्दोलन उत्पन्न करने वाली सिद्ध होगी। नयनाभिराम–ननँद–ननदोई के अयोध्या पधार जाने पर, उनको वहाँ की असीमानन्दोपकरण–समग्र–सामग्रियों के साथ परमैकान्तिक–रसमयी–ललित–लीलायें, परमानन्द का निरतिशय–अनुभव करायेंगी। युगल–मूर्तियों को अपार संवित–सुखानुभूति होगी; वस्तुतः इस कल्पना जनित–आनन्द की अनुभूति ही तो, आपका आनन्द है, अतएव आप श्री को प्रकृतिस्थ होकर प्रसन्नता के भव्य–भवन की शान्ति–शैया में प्राणपति के साथ शयन करना चाहिये, साथ ही दैनन्दिनी दिनचर्या का भी निर्वाह आप श्री से सम्पन्न होता रहे, यही मेरी प्रार्थना है।

श्री सिद्धिजी : चित्रे ! तुम्हारी उत्तुङ्ग–भक्ति–भावना का आदर्श एवं अनुपम संगीत के सर्वोच्च–शिखर का स्पर्श, प्रभु–प्रेमियों को आनन्दमय बना देने में सर्वथा समर्थ है। कथन भी वास्तविक तथ्य से पूर्ण है किन्तु क्या करूँ ? चिन्ताहरण–चतुर–चित्तामणि ने मेरे चित्त को चुरा लिया है, माँगने पर भी वे चौर्य–चूड़ामणि मेरे मन को मुझे वापस नहीं करना चाहते इसलिये ज्ञानेन्द्रियों में शिथिलता आ जाने के कारण कार्मेन्द्रियाँ शक्ति–हीन हो गई हैं उठने–बैठने की क्षमता भी समाप्त हो चली है, किस प्रकार से आह्निक–करणीय–कृत्यों का संपादन करूँ ? हाय ! प्राणनाथ की परिस्थिति का भी मुझे ज्ञान नहीं है। चित्रे ! क्या तुम बतला सकती हो कि मेरे जीवन–धन वर्तमान समय कहाँ हैं और किस स्थिति में हैं ? हाय ! प्रियतम का पता न होने पर भी प्राण सुरक्षित हैं, कितनी कृतघ्ना और स्वार्थ की साक्षात् प्रतिमा हूँ, मैं !

चित्राजी : पति–परायणे ! आपके प्राण–प्रियतम आपकी सेविकाओं से सुरक्षित अपने शयन–कक्ष में अचेतावस्था का आलिङ्गन करते हुये, विरह–वेदना से कराह रहे हैं।

श्री सिद्धिजी : हाय ! हाय !! मेरे जीवन–धन अपनी भगिनि–भाम के वियोग से व्याकुल–वदन, विस्मृति के अंक में सो रहे हैं। हाय ! मैं उपचार के द्वारा उन्हें सचेत भी न कर सकी। हाय ! हाय !! विरह–वह्नि में विदग्ध होते हुये, अपने आत्म देव को उनके प्रिय की कीर्ति–सुधा पिलाकर, शान्ति का समनुभव न करा सकी। हाय ! कितनी अधम–नारी हूँ मैं। क्या करूँ? चित्रे ! जहाँ मेरे प्राणनाथ हों, वहीं मुझे अभी–अभी ले चलो। प्राण प्यारे का दर्शन ही तो, मुझे स्वास्थ्य संप्रदान करने में सम्यक्–प्रकार–समर्थ है। हाय! प्रेम–प्रपूरित–संदेश भी अपने पति–परमेश्वर के पास, अभी तक प्रेषित न कर सकी मैं। अहो ! इस निर्लज्ज–निठुर–नारी का निरीक्षण करके, निठुरता भी नाक सिकोड़ने लगेगी।

चित्राजी : मदिरेक्षणे ! आपकी आँखों के प्यालों में भरे हुये, प्रेमाश्रु के मोहक–मैरेय को देखते ही, मिथिलेश–कुँअर कहीं पीकर अधिक मदोन्मत्त न बन जाँय; अतएव प्रथम आप पूर्ण–रूपेण–प्रकृतिस्थ हो जाँय, पश्चात प्रियतम को प्रकृतिस्थ करने का साधन विचार करें अन्यथा आत्म–देव आप श्री के भाव में विभोर बनकर, भाव–प्रधाना

अपनी पत्नी के आलिङ्गन में आबद्ध, निश्चय अपने को पहले से कई गुना अधिक-अस्वस्थ कर लेंगे, ये मेरा कई बार का अनुभूत-विषय है।

श्री सिद्धिजी : चित्रे ! प्रियतम की दशा दयनीय है, वे विरह के बाण से व्यथित होकर, चेतना-शून्य से शयनासन की शरण ले रखे हैं; अतएव मेरा मन, मन-मोहन श्याम-सुन्दर-रघुनन्दन के श्याल के समीप चला गया है। सहेली! शरीर को भी सीताग्रज के समीप शीघ्र पहुँचा दो। हाय... ! चित्त, चित-चोर के चित्त को चुराने वाले चतुर-शिरोमणि-मिथिलेश कुँअर की चिन्ता से चंचल हो उठा है उसको, उनके दर्शन बिना अब एक क्षण चैन नहीं। हाय ! प्राण-प्रीतम की पीड़ा का अनुभव करके भी, मै अभी यहाँ बैठी हूँ। हाय ! हाय !! कितनी कठोर-हृदया हूँ। हाय.... !

[कहकर पुनः मूर्छित हो जाती हैं। चित्राजी उपचार के द्वारा प्रकृतिस्थ कर.....]

चित्राजी : पति प्राणे ! चलें, अभी चलें। मैं आपको अपने शरीर के सहारे, धीरे-धीरे प्राणेश्वर के कक्ष में ले चलूँ !

श्री सिद्धिजी : सखि ! चलने के लिये मैं स्वयं आतुर हूँ। चलो, ले चलो न!

[चित्राजी कुछ सखियों के साथ अपने शरीर के सहारे, सिद्धि-कुँअरि को लेकर श्री लक्ष्मीनिधिजी के समीप प्रस्थान करती हैं।]

पटाक्षेप

....

एकोन चत्वारिंशः दृश्यः ३९

[श्री सिद्धि कुँअरिजी अपने पति-परमेश्वर को वियोग की विशाल-शैय्या में सोये हुये देखकर, चिन्तित हो जाती हैं, पुनः धैर्य-धारणकर उपचार-द्वारा-प्रकृतिस्थ करने का प्रयास करती हैं। श्री मिथिलेश कुमार किशोरीजू की विदाई के दिन से चौथे दिवस प्रकृतिस्थ होते हैं। श्री सिद्धिजी उन्हें फलों के रस तथा अन्य औषधियाँ देकर शरीर में शक्ति-संचार होने का साधन करती हैं।]

श्री सिद्धिजी : (श्री लक्ष्मीनिधिजी के सचेत होने पर) प्राणनाथ ! अपने प्रियतम के प्रति किया हुआ प्रेम पराकाष्ठा को प्राप्त होकर, विदेह-वंश-विभूषण को विदेहता की चरम-स्थिति में स्थित किये बिना न रहा। हाय ! नाथ की विरह-वेदना का विलक्षण-चित्र, चित्त-पटल पर कभी किसी से चित्रित नहीं किया जा सकता। आप श्री के अतिरिक्त अन्य के अनुभव का विषय भी उसे नहीं कह सकती। हाय ! हाय !! इस विरही-व्यथा की कथा का स्मरण मात्र स्मृति-शून्य कर देने में सहज ही सक्षम है। प्रियतम को ज्ञान न होगा कि हम आज चौथे दिन चेतनता को प्राप्त होकर, दासी के बड़े अनुनय-विनय से अनार-दाने का किंचित-रस-पान किये हैं। हाय ! मेरे ननँद-ननदोई का मिथिला से अवध के लिये प्रयाण करना, परम मांगलिक और आध्यात्मिक आनन्द

के सिन्धु को समुन्नतशील बनाने वाला है किन्तु उनकी विरह–व्याधि के तुषार से प्रीतम का वदनाम्भोज मुरझाया हुआ देखकर, मुझे असह्य–वेदना का अनुभव हो रहा है, अस्तु, नाथ ! नृपति–किशोर–किशोरी के गुण–गणों का अनुसंधान करते हुये प्रसन्न –वदन बने रहें, यही एकमात्र कामना और प्रार्थना है।

श्री लक्ष्मीनिधिजी : (सिद्धिजी को हृदय से लगाकर) जीवन–संगिनि ! आप अपने जीवन–नाथ की जरनि को जुड़ाने वाली जीवनी–जड़ी हैं। आपका अलौकिक–आलिंगन आत्मा को अत्यधिक आनन्द प्रदान करने वाला, उसी प्रकार सर्व–भावेन सिद्ध हुआ है जैसे सृष्टि के श्रृँगार–स्वरूप–मानव के अन्दर परमात्मा की एक दिव्य ज्योति जलती हुई, उसको निम्न–स्तर से ऊँचे उठाकर, मानवीय–सतकर्मों की ओर प्रेरित करे अथवा जैसे किसी प्रभु–प्रेमिक को प्रभु के परम–प्यारे–प्रेमी–भक्त का सम्मिलन। आपका सुझाव–प्रेम–पथ–प्रदर्शिका–सहचरी के अनुरूप ही है। भगिनी–भाम के चित्ताकर्षक–रूप के अदर्शन–काल में हमारे प्राण का संरक्षक उन युगल–मूर्तियों के नाम का संकीर्तन, लीला का चिंतन, धाम की प्राप्ति की कामना और अनुपमेय–गुण–गण–निलय के, सुन्दर–स्वभाव का, अनुभव करना ही तो है। अतएव मेरी प्रियतमा को चाहिए कि अपने मृत–प्राय–प्रियतम को मधुर–मुख–विनिस्सृत, मधुर–ध्वनि से हृदय–हरण नाम–संकीर्तन की सुधा पिलाकर अमर बना दें।

श्री सिद्धिजी : मेरे प्रियतम, प्रथम से ही कीर्तनानुराग के आलोक से अपनी प्रियतमा के हृदय को आलोकित करते चले आ रहे हैं; आज भी अपने प्रेम–प्रकाश से दासी को प्रकाशित करने के लिये, कीर्तन सुनाने की प्रेरणा दे रहे हैं। अहो ! कितनी अहैतुकी–अनुकम्पा ! कितना अपनत्व ! कितनी उदारता है। अहा ! कितनी कीर्तन श्रवण करने की आतुरता और कितना प्रेमास्पद के प्रति प्रेम है। अवश्य, अवश्य। अपने प्राण–प्रीतम के प्राणों का परम प्रिय श्री सीताराम–नाम–संकीर्तन श्रवण कराने का कैंकर्य करूँगी। (चित्रा की ओर देखकर) चित्रे ! विविध–वाद्यों के साथ सम्पूर्ण सखियों एवं दासियों को संकीर्तन–रास करने के लिये, प्राणनाथ के समीप शीघ्र समुपस्थित हो जाना चाहिए। जानती हो न कि हमारे पति–परमेश्वर अपने आराध्य के पूजन–काल में भी, अर्चना, अलंकार, कुसुम, तल्प और आन्दोलिका आदि पूजनोपचारों में संगीत–स्वर की संप्राप्ति अनिवार्य व आवश्यक समझते हैं क्योकि उससे उन्हें अत्यन्त आनन्द की अनुभूति होती है।

चित्राजी : रसप्लुते ! कीर्तन–रस–रसज्ञ–रामनामानुरागी–रसिकाधिराज–मिथिलेश–कुँअर को, आप अपनी रसमयी–संकीर्तन–कला के नैपुण्य से रससिक्त करने का कैंकर्य करना चाहती हैं, यह हम सब सखियों का सर्व–श्रेष्ठ–सौभाग्य है क्योंकि हम लोगों की उपादेयता, आप दम्पति के सुख–साधन में सदा संलग्न रहने पर ही है। आप श्री के आज्ञा का अनुवर्तन अभी–अभी हो रहा है।

[चित्राजी सब सखियों एवं दासियों को संकेत करती हैं। सभी तत्क्षण विविध–वाद्यों से सुसज्जित हो सेवा में समुपस्थित होती हैं। विविध–प्रकार के वाद्यों से अलंकृत सखियों से समावृत होने पर]

श्री सिद्धिजी : चित्रे ! अनन्त–सौन्दर्य–माधुर्य–सुधा–सुशीतल–वदनविधु की ज्योत्सना से प्रेमामृत का पूर्णालोक प्रदान करने वाले, लोकाभिराम–रघुनन्दन

श्री रामभद्रजू के पावन–नाम का संकीर्तन, मैं प्रारम्भ कर रही हूँ। तुम सब सखियों से संयुक्त प्रेम–प्रवाह में बही हुई, संगीत–सौरभ की सुगन्ध से स्वयं सुगन्धित होकर मेरा अनुसरण करो।

[आनन्दोन्मत्ता श्री सिद्धिजी समाज समेत समवेत स्वर से श्री सीताराम–नाम का मधुर संकीर्तन करने लगीं। श्री लक्ष्मीनिधिजी कीर्तन सुधा को कर्णपुटों से पान करके, प्रेम–विभोर हो रहे हैं]

कीर्तन : जनकजायै नमः राम राघवाय नमः
प्रिया–प्रियतम, रस–रसिकेश्वर सीताराम

[कीर्तन की सुमधुर–रस–वर्षा से आप्लावित श्री लक्ष्मीनिधिजी महाराज कीर्तन–समाप्ति पर अपने हृदयोद्गार प्रकट करते हैं।]

श्री लक्ष्मीनिधिजी : अहो ! रस–वर्षिणी के सुमधुर–कीर्तन–रस की अमृतोपम–वर्षा ने, मेरे अन्तःकरण की भूमि को रस–मग्न कर दिया, जिसमें अस्त होकर अहंकार का अस्तित्व ही प्रनष्ट हो गया। अहा ! प्यारी के मधुर– मुख से निष्पन्न, मन–मोहन के मधुर–नाम के मधुर–मधुर–संकीर्तन ने मेरे मन को मधु–रस–पान करने का रसिक बना दिया है। हाय ! जी चाहता है कि इस मधुरामृत का पेय सतत पीता ही रहूँ । अहो ! कोलाहल–युक्त–नीरस प्रान्त को नीरव और सरस बनाने की सामर्थ्य एकमात्र साकेत–विहारी श्री सीतारामजू के नाम–संकीर्तन में ही है। कहीं कीर्तनकार, कीर्तन–प्रिय हुआ तो कहना ही क्या है। स्वर्ण में सुगंध आ जाती है, पत्थर मोम बन जाता है और मरुभूमि में मीठे–पानी का समुद्र लहराने लगता है। धन्य है, हमारी प्रियतमा की कीर्तन–प्रियता को। जिसके प्रभाव से कीर्तनीय–करुणा–वरुणालय का सहज–सौन्दर्य–सार सुखमय–सुरूप–आँखों के झूले में झूलने लगता है। उक्त विशुद्ध–विग्रह के अनुभव से उनका अव्यक्त–रूप भी प्रेम–प्रवाह के रूप में कीर्तन के मध्य में प्रकाशित होने लगता है। अहो ! मैं प्रेम की प्रतिमा, पत्नी को प्राप्त कर अपने प्रेमास्पद के परम प्यार का पात्र बन जाऊँ तो इसमें आश्चर्य ही क्या है।

श्री सिद्धिजी : प्राणनाथ ! आपके भाम–भगिनि के नाम, रूप, लीला और धाम में ही जादू है, स्वयं ये सबके सब सच्चिदानन्द–प्रेम–स्वरूप हैं। कोई कैसा भी हो, इनका स्मरण करते ही प्रेम–स्वरूप बन जाता है तथा स्मरण–कर्ता के कर्म–संस्कार की जननी, वासना मर कर पुनः जीवित नहीं होती। धन्य है आपके अनुपम–औदार्य को, जिसने मुझे उक्त चारों–तत्वों के सेवन का सौभाग्य संजो दिया है।

श्री लक्ष्मीनिधिजी : प्रेम–विग्रहे ! आर्य–नारी का यह सहज स्वभाव होता है कि वह अपने पति–परमेश्वर के सम्मान को ही अपना सम्मान समझकर सुखी होती है, तद्नुसार आपका वाग्विसर्ग प्रति–पद में प्रेमोद्गार का दर्शन कराता हुआ मेरी प्रशंसा में समाविष्ट रहता है। अच्छा ! अब आप और हम अपने प्राणाधार की स्मृति से स्मृति–शून्य की तरह भावी–भेंट की आशा से जीते रहें। अहो ! हमारे भाम–भगिनि का रूपौदार्य, संसार की सभी वासनाओं का सहज ही समूल शमन करने में कितना शक्तिशाली है। अहा ! यंत्र–मंत्र तथा जादू–टोना में मारण–मोहन–उच्चाटन और वशीकरण की शक्ति, जिसके समक्ष अत्यन्त–अल्प और श्रम–साध्य प्रतीत होती है।

श्री सिद्धिजी : प्रेम-मूर्ते ! कंचन-विपिन-विहारिणी-विदेह-वंश-वैजयन्ती-विदेहराज, नन्दिनीजू, जब आपकी क्रोड़ में, अपने रूप, गुण-शील का अनुपमेय-वैशिष्ट्य लिये हुये आ जाती थीं, तब वात्सल्य-भाव से भरे हुये आप, उनके कमल-कोमल-पाणि-पल्लवों तथा यावक-रञ्जित-पादारविन्दों का स्पर्श अपने अधर-पल्लवों से करके अमृताम्भोधि में मग्न हो जाते थे, अस्मिता अस्त हो जाती थी और प्रेम का प्रवाह फूट निकलता था, जिसमें बहते मुझे किञ्चित विलम्ब न लगता। अहा ! श्री किशोरीजू की काय-सम्पत्ति के स्मरण ने ही तो भव-रस से विरति उत्पन्न कर, मुझे आप श्री की अनुगामिनी बनाया है। हाय ! जिसके सीता नाम से मानव-मस्तिष्क में सोई हुई, अनन्त-शक्तियाँ जग जाती हैं और अविद्या की राख में ढकी हुई प्रकाश की चिनगारी, प्रकाश-समूह से भेंट करने लगती हैं, वह सीता समग्रतया सम्प्राप्त होकर, हमें सौभाग्य के सिंहासन में बिठलाईं धन्य है कृपा-सागरीजू की कृपा को। हाय ! अब तो केवल नाम-स्मरण ही जीने का आधार है। रूप की प्यासी आँखें तृषा से फूट न जाँय। हाय ! अब वह क्षण कब संप्राप्त होगा, जब प्राणनाथ के क्रोड़ में विहार करती हुई विदेह-राजकुमारी का दर्शन कर आनन्द में ओत-प्रोत हो जाऊँगी मैं।

[श्री किशोरीजू की मधुमय-स्मृति में श्री सिद्धिजी प्रेम विभोर हो जाती हैं।]

श्री लक्ष्मीनिधिजी : प्रियतमे ! अवध-नरेन्द्र के कुमार राम जब कमनीय-कैशोर्य-कान्ति की सुधा-पूर्ण-शुभ्रज्योत्स्ना से सम्पन्न हमारे नयन-पथ के प्रथम-प्रथम पथिक बने थे; तब से इन नयनों के मार्ग से अन्य सभी बटोहियों का आना-जाना, अपने आप अवरोधित हो गया है, निश्चय नहीं कर पाता कि श्याम-सुन्दर-रघुनन्दन आँख के रूप में परिवर्तित हो गये हैं कि नेत्र ही मेरे मन-मोहन राम का रूप धारण कर लिये हैं। जहाँ देखता हूँ वहाँ राम, जहाँ स्पर्श करता हूँ वहाँ राम, जहाँ सुनता हूँ वहाँ राम, जहाँ सूँघता हूँ वहाँ राम और जहाँ रसना से रस लेता हूँ वहाँ भी रसिक-शिरोमणि-राम अपने पूर्ण रामत्व के साथ, श्री किशोरीजू को लिये हुये प्रत्येक देश, काल और चेष्टाओं में दृष्टि-गोचर हो रहे हैं किन्तु हृदय विरह-वह्नि से दग्ध हो रहा है, कुछ समझ नहीं पाता कि यह कौन सी दशा सम्मुख समुपस्थित है जो एक कर में जलता लकूठा और एक कर में अनोखा-पेय-पदार्थ लिये हुये नृत्य कर रही है। अहा ! परम-प्रिय-पृथ्वी-पति-कुमार का स्पर्श असीम और अनाख्येय-आनन्द का अनुभव करा रहा है। अहा हा ! भौतिक-कोमलता, प्रियतम की कोमलता की शतांश भी नहीं हो सकती। अरे ! अरे ! हाय ! हाय!! हृदय के टुकड़े-टुकड़े से हो रहे हैं। हाय ! हृदय की झोपड़ी जली जा रही है, मैं अपने हृदय-धन को कहाँ रखूँगा ! हाय ! हाय !! मेरे प्रियतम की विहार-भूमि, वियोग की दावाग्नि से धधक रही है, मैं इसकी रक्षा करने में क्यों असमर्थ हो गया हूँ। हाय ! हाय !! मेरे प्रियतम नेत्र-पथ में विचर तो रहे हैं किन्तु भीतर प्रवेश कर, अपने भवन की वह्नि को बुझा क्यों नहीं रहे.... !

[कहकर श्री लक्ष्मीनिधि जी अचेत हो जाते हैं। सिद्धिजी धीरज धारण कर उपचार द्वारा प्रकृतिस्थ करती हैं।]

श्री सिद्धिजी : (प्रकृतिस्थ करके) जीवन-धन ! सुख-स्वरूप-जनक-प्रसूता श्री जानकीजू अपने प्राणनाथ के संग सर्वदा प्रमोद-विपिन में परिकरों से समावृत विहार करें, ऐसा मंगलानुशासन तो नित्य किया करती थी और करती हूँ किन्तु मिथिला से उनके

अयोध्या गमन करते ही, विरह के बन में मैं अपने प्राणनाथ के साथ भटकने लगी। हाय ! हाय !! कितना कँटीला–वन है यह ! कँटीली–झाड़ियों के स्पर्श से शरीर चिरा जा रहा है हाय ! हमारे हृदय–धन के हृदय को विरह के काँटे कुरेद रहे हैं किन्तु मेरे हृदय में सहिष्णुता भी कम नहीं है। हाय ! आत्मा के न रहने पर भी यह ज्यों का त्यों बना है। अपने प्रीतम –जल के वियोग से पङ्क विदीर्ण हो जाता है किन्तु यह महाचेतन का आवास होने से हृदय संज्ञा प्राप्त करने पर भी, अपने स्वामी के विरह से व्यथित होकर फटने का नाम तक नहीं ले रहा है। प्रभो ! सीताकान्त अपने हृदय–कमल में अपने श्याल तथा सरहज को स्थान देकर, अपनी अमृत–वर्षिणी–कृपा दृष्टि से विरह की वह्नि में भस्म नहीं होने देते, यह सत्य मन में समा रहा है।

[पुनः स्वतः को धिक्कारती हुई सिद्धिजी छाती में पाणि–प्रहार कर–करके विलखने लगती हैं।]

श्री लक्ष्मीनिधिजी : (धैर्य देकर) मधुर–प्रिये ! माधुर्य–महोदधि–मन–मोहन–श्याम–सुन्दर रघुनन्दन राम के सौलभ्य–गुण का सर्व–कलासमन्वित–पूर्ण–चन्द्र तो सिद्धि–सदन के प्राङ्गणाकाश में ही सम्प्रोदित हुआ है, जिसके सुधाशुओं का सर्व भावेन–सम्यक् पान, सिद्धि–चकोरी को ही सम्प्राप्त हुआ है; अतएव अमृत से ओत–प्रोत हो जाने पर अमरता का आलोक, आपके अङ्गों से प्रस्फुटित हो रहा है। हमारी जीवन–संगिनी का जीवन, जानकी–जीवन के श्याले के जीवन के लिये है अन्यथा भाम–भगिनि के वियोग से उनकी भक्ता अपनी प्रियतमा की अनुपस्थिति में, मेरे जीवन की ज्योति कैसे जल सकती इसलिये अवध–किशोर के इस असम्प्रयोग–काल में, उनके रूप, शील और गुण का परस्पर अनुकथन करके कालक्षेप करते हुये, हम दम्पति, नृपति–किशोर–किशोरी के कैंकर्य के लिये चेष्टित बने रहें। अहो ! हमारे भगिनि–भाम के चारुतम–चरित्र का वैशद्य और विस्तार इस बात का द्योतक है कि वे संसृत–संतप्त प्राणियों के शान्ति–प्रदाता एवं जनमन–रंजन के लिये वेद–वर्णित–विशुद्ध–ब्रह्म–रस हैं। अहा ! रामनाम लेते ही, श्रीरामभद्र का पुंसा–मोहन–स्वरूप सम्मुख आविर्भूत हो जाता है। रूप–रसिके ! रघुनन्दन के पाद–पद्मों की अरुणिम–आभा, श्याम और श्वेत–प्रभा के साथ त्रिवेणी के सौन्दर्य से शतशः समुन्नतशील होकर, अपने अनाख्येय–आकर्षण से मुनियों के मन को अपनी ओर आकृष्ट ही नहीं करती अपितु अपने से अन्यत्र जाने की किंचित रुचि का उत्पादन नहीं करने देती। अहो ! मेरा चित्त–चंचरीक यही चाहता है कि इन चरण–कमलों का मकरन्द–पान करता हुआ, इन्हें चूमता ही रहूँ। अहा ! कैसा अनुपमेय–सौन्दर्य है। हाय ! ये चरण–कमल ही तो मेरे हृदय के हार हैं, नहीं....नहीं मेरे हृदय के ये देव हैं, नहीं....नहीं ये तो मेरे हृदय के दो फेफड़े हैं। नहीं....नहीं यही मेरे हृदय हैं, नहीं, नहीं....ये मेरे शरण्य हैं। नहीं, नहीं....ये ही तो मेरे सर्वस्व हैं।

[आवेशित–चित्त से श्रीरामजू के चरण–कमलों का स्पर्श करने उठते हैं किन्तु....लड़खड़ा जाते हैं श्री सिद्धिजी शीघ्रता पूर्वक उन्हें पकड़ लेती हैं।]

श्री सिद्धिजी : प्राणनाथ ! आपके नेत्र ही सफल हैं जो अपने इष्ट के वियोग में भी, उनके रूप–रस का पान किया करते हैं। लोचनों के विषय लोचनाभिराम–राम और सीता वर्तमान–समय में साकेत को अपने रूपौदार्य से स्वस्थ और सुखी बना रहे हैं। हाय ! ननँद श्री का चरणचुम्बन कब उनकी भाभी को मिलेगा। अहो ! श्री किशोरी जी का नख शिख–सौन्दर्य–सिन्धु जो

अनन्त–माधुर्य और सौकुमार्य से संयुक्त है, कब दर्शन करूँगी। हाय ! त्रिभुवन–मन–मोहन– सीताकान्त की कमनीय–कान्ति–सुधा का समग्र–पान, उनकी सरहज को कब संप्राप्त होगा। हाय ! कई दिनों से युगल–मूर्तियों के दर्शन बिना जी रही हूँ। मेरा हृदय वज्र से बढ़कर कठोर है। हाय ! हाय !!

[कहकर श्री सिद्धिजी प्रेम–मूर्छा में अवस्थित हो जाती हैं।]

श्री लक्ष्मीनिधिजी : (उपचार द्वारा सचेत करके) प्रेमाङ्गि ! प्रेमियों के सम्पूर्ण दिन विरह–वह्नि में जलते–भुनते हुये ही व्यतीत होते हैं, तदनुसार हम लोगों को भी अब आह–भरी–श्वास के साथ ही कालक्षेप करना पड़ेगा। हाय ! हाय !! भगिनि–भाम के रूपौदार्य तथा शील स्वभाव का किंचित स्मरण जब मेरे वज्र–विजेता–हृदय को द्रवित कर देता है, तब आपके मोम सदृश हृदय का तुरंत पिघल जाना सरल और स्वाभाविक है किन्तु मेरे कर्ण–पुटों में प्रेमास्पद की कथा–सुधा का संचार करने के लिये, आपको अचेतनता का आलिङ्गन न करना पड़े, यही कामना करता हूँ।

श्री सिद्धिजी : नाथ ! अन्तर और बहिर–प्राण ननँद–ननदोई के कीर्ति–चन्द्र के अमृतांशु से ही, हम लोगों की जीवन–जड़ी प्रपुष्ट होगी। हाय ! युगल–किशोर का अप्रतिम–सुन्दर–स्वभाव चराचर–जगत को आकर्षित करने वाला है एवं उनका गुण–वैभव भी ऋषि–मुनि तथा ब्रह्मा–विष्णु–महेशादि देवों को विस्मयोत्पादक है। शरीर–सम्पत्ति की सर्व–भावेंन, सर्व–श्रेष्ठता की जब इयत्ता ही नहीं है तब उस सौन्दर्य–सिन्धु में सब समाज का निमग्न हो जाना स्वाभाविक ही है जिसके प्रमाण में स्व–स्वशक्तियों के समेत विधि–हरि–हर के अन्तःकरण का मोहित हो जाना कम नहीं है फिर जिसे उनका दर्शन, स्पर्शन और एकान्तिक–कैंकर्य प्राप्त हुआ है, वह व्याकुलता का अनुभव करे तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ? सबसे बड़ा आश्चर्य तो उसका, उनके बिना जगत में जीवित रहना है। हाय ! श्री श्याम–सुन्दर का मुख–चन्द्र इस चकोरी को कब देखने को मिलेगा ? हाय ! प्रियतम की नयन–नलिनियों का निदर्शन निज–नयनों को कब सुख के संप्रवाह में प्रवाहित करेगा। मुख–मयंक से प्रस्फुटित मन्दस्मिति की सुधा–पूर्ण–किरणें कब मेरी हृदय–गुहा को प्रकाशित कर, अमृतानन्द का अनुभव करायेगी। हाय ! ननदोई के पाणि–पङ्कजों का कोमल–कोमल–स्पर्श कब प्यार पाने की अभीप्सा को पूर्ण करेगा ? वैदेही–वल्लभ के पंद–पंकज का पराग प्राप्तकर, इस भोली–भाली–भ्रमरी को कब तृप्ति की अनुभूति होगी। हा ! रसिकेश्वर–रघुनन्दन ! हाय ! मन–मोहन ! हाय ! जीवन–सर्वस्व... !

[कहकर मूर्छित हो जाती हैं। कुँअर श्री सिद्धिजी को सचेत करते हैं।]

श्री लक्ष्मीनिधिजी : हे रघुनाथ–रूप–रसिके ! योगिवर्य–श्री याज्ञवल्क्यादि प्रभृत गणों के चित्त को रमाने वाले राम के वियोग में श्याम–वपुष–गन्धोन्मादित सरहज–श्याल के जीवन–धारण करने से, प्रियतम के प्रियकरत्व की भावना सिद्ध होगी अतएव हम लोग अपने हृदय–धन–रघुनन्दन तथा लाड़िली श्री किशोरीजी के अदर्शन–काल में, उनकी स्मृति की जीवन–जड़ी के सहारे, विस्मृति की शैय्या में पड़े–पड़े जीवित बने रहें। विरहे–क्षणे ! हृदय–प्रदेश में अंकुरित भगवदनुराग का मूल्याँकन, विरह की कसौटी में कसने से ही संभव है। विरह के सौजन्य से विरही को उज्जीवन और अतिशयानन्द

की अनुभूति होती है। संयोग में, संयोग-भङ्गका भारी भय है किन्तु इसके विपरीत वियोग में स्मृति-उद्भूत यथार्थ-संप्रयोग भय-शून्य है, उसका भङ्ग होना अतीत-काल में भी संभव नहीं। प्रियतम को निर्भय होकर, बिना किसी संकोच, मर्यादा, मान और संदेह के अपने बाहुपाश में बाँधे रहना, विरह-मिलन में ही संभव है। संयोग-मिलन में तो अनेकानेक-अड़चनें आकर सामने समुपस्थित होकर, मिलन में अवरोध उत्पन्न कर देती हैं। अस्तु युगल-मूर्तियों के स्मरण में सहज संलग्न, हम लोग हृदय-प्राङ्गण में विहरते हुये, अपने आराध्य देव का अनवरत-आलिंगन कर-करके आनन्द की अनुभूति करें, ठीक है न ? प्रेम-विग्रहे ! सभी प्रेमिक, पूर्ण-प्रेमिक के स्वरूप को नहीं समझ सकते, जिस अवस्था में पूर्ण-प्रेमिकत्व का एवं प्रेमिकोचित प्रेम-लक्षणा-परा-भक्ति की पराकाष्ठा का विकास होता है, प्रेमिक उसी अवस्था में प्रेम-शब्द का यथार्थ-अर्थ समझने में समर्थ होता है।

श्री सिद्धिजी : प्रियतम की सूक्ष्म-बुद्धि का सादृश्य प्रियतम में ही दृष्टिगोचर होता है। आपकी वाग्विसर्गता, वाग्-वैभव से सर्वथा ओत-प्रोत है, जिसमें अशुद्धि और असत्यता की कालिमा, किसी कवि-कोविद से कभी भी आरोपित नहीं की जा सकती। हृदय-अजिर-बिहारी से, जब हृदय मिल गया तब उनका अदर्शन हृदय में असंभव है। किन्तु क्या करूँ ? इन चर्मचक्षुओं की चापल्यता और अधीरता को बिना युगल-किशोर के दर्शन, इन्हें शान्ति का पाठ पढ़ाना, ऊसर में बीज-वपन के समान ही प्रतीत होता है ! हा ! श्याम सुन्दर ! हा सीते ! हा ! जनकात्मजे ! हा ! धरणिजे ! हा ! शोभने ! हा ! लोचनाभिरामे ! दर्शन-दान देकर हम दोनों को लोचन-लाभ से लाभान्वित करें। (कुछ देर में धैर्य धारण कर) मेरे प्राणनाथ ! चार दिन हुये आपको विस्मृति की शैय्या में पड़े हुये, आज़ मेरे भाग्य-विधाता ने आपको स्मृति प्रदान की है। प्रभो ! सायं-कृत्य करने का समय है, अस्तु हरि-सेवा में अधिकाराप्ति के लिये, उसका भी निर्वाह होना चाहिये।

श्री लक्ष्मीनिधिजी : प्रिये ! सह-धर्मिणी के धर्ममय-वचनों को धारण करना, अपना परम कर्त्तव्य है; अतएव धर्म-कार्य की अवहेलना न करके, उसके संपादन हेतु मैं चल रहा हूँ।

[दोनों सायं-कालीन कृत्य करने के लिये प्रस्थान करते हैं।]

पटाक्षेप

....

चत्वारिंशः दृश्यः ४०

[श्री सिद्धिजी अपनी सखी-सहेलियों के मध्य अन्तःपुर की वाटिका में आसनासीन हैं, परस्पर में श्री विदेहराज-नन्दिनीजू तथा श्री दशरथ-नन्दन जू के रूप, गुण, स्वभाव तथा चरित्र का चित्रण करती हुई, विरह-विभोर हो रही हैं। भास्कर भगवान तीन-प्रहर आकाश-मार्ग में चलकर, अस्ताचल जाने के लिये, चतुर्थ-प्रहर की बेला में प्रतीची-दिशा की ओर अपना दर्शन जगज्जीवों को प्रदान कर रहे हैं। वाटिका में प्रकृति का सौन्दर्य सुर-ललनाओं के मन को भी मुग्ध करता हुआ, नन्दन-बन की श्री का अपहरण कर रहा

है। सुरभित-पुष्पों की सुगंध, गन्ध-वाहक-वायु के द्वारा दशो-दिशाओं को दिव्यानन्द का अनुभव करा रही है। पक्षियों का कलरव तथा मधु-मत्त-मधुपों की गुनगुनाहट चित्त को, उद्यान की ओर आकृष्ट कर स्वर्ग-सुख का तिरस्कार करा रही है। किन्तु...हाय ! वहाँ विदेहराज की पुत्र-वधू आँखों से अश्रु बहाती हुई, प्रिय के वियोग में खिन्न-मना वैसी ही बैठी है जैसी आहत-भ्रमरी चम्पा के बाग में ! हाय ! निर्दयी विरह-वधिक, प्रेम-पुजारियों को स्मृति-धनुष पर चिन्तन का बाण चढ़ाकर, बिना बेधे नहीं छोड़ता। सबसे निरापद एवं पतन के भय से सर्वथा शून्य ज्ञान-मार्ग है, जहाँ प्रेमी प्रेमास्पद का नाम नहीं फिर भी हृदय के धनी प्रेम की ही पूजा करते हैं, आश्चर्य !]

श्री सिद्धिजी :(साश्रु) चित्रे ! श्री सीता-वल्लभजू ने कुँअर-वल्लभा को अपने पद-पद्म-पराग की भोली-भाली-लुब्धा-भ्रमरी बना कर, संग में न रखने का कौन सा न्याय किया है ? हाय ! यदि मैं अपनी ननँद अयोनिजा के कैंकर्य करने के लिये अवध-धाम चली जाती तो मेरे प्राणनाथ परम प्रसन्न होते क्योंकि वे अपने भाम-भगिनि की सेवा को, स्वयं की सेवा और उन्हीं के सुख को स्वसुख समझते हैं। हाय ! चतुर-चूड़ामणि-श्यामसुन्दर-रघुनन्दन ने मुझे उलटा-सीधा पाठ पढ़ाकर, मिथिला से अवध न जाने के लिए राजी कर लिया। हाय ! मन-मोहन ! मेरे मन को मोहित कर पुनः मुझे अकेली यहाँ तड़पती छोड़कर चले गये। हाय ! निठुर-ननदोई की निठुरता की हद हो गई। अरे ! मेरे जाने से उन्हें मेरे लिए कोई चिन्ता न करनी पड़ती। मैं सत्य कहती हूँ, सहेली ! मुझे उनका दर्शन और कैंकर्य चाहिये था अन्य कुछ नहीं, सेवा मिलती रहे तो कोटि-कोटि कठिन क्लेश भी सेवा जनित सुख के सामने नगण्य हैं और इसके विपरीत दर्शन व कैंकर्य के अभाव में कोटि-कोटि सुख भी, दुख का ही प्रसार करने वाले हैं। हाय ! मैं अपनी ननँद के अन्न-आरोगने के पश्चात् उसी पत्तल को झारकर शीथ-प्रसादी सेवन कर सेवा के लिये शरीर की सुरक्षा कर लेती, श्री किशोरीजू के उतारे हुये फटे-पुराने-वस्त्रों से शरीर को ढककर तन की लाज रख लेती किन्तु उनके प्रदर्शन का अभाव तो अति ही असह्य हो रहा है ! हा ! श्याम सुन्दर ! हा ! रघुनन्दन ! हा ! सीते ! हा ! श्यामे...... !

[दीर्घ निश्वास लेकर, सिद्धिजी उसासें भरने लगती हैं।]

चित्राजी : प्रेम-पण्डिते ! प्रणय-कोप के कारण ही आप ऐसा कह रही हैं कि मुझे मिथिला में छोड़कर, अयोध्या चले जाना, रघुनन्दन का कौन सा औचित्य है अन्यथा प्रेमी को प्रेमास्पद में दोष-दर्शन का अवकाश कहाँ ? आप श्री से मैं कई बार सुनी हूँ कि जहाँ पवित्रतम प्रेम चरमावधि को प्राप्त हो जाता है, वहाँ गुण की किंचित अपेक्षा नहीं रह जाती, न कोई कामना ही रहती, अपितु प्रतिक्षण-प्रवर्धमान-प्रेम का प्रभाव ही प्रेमी को प्रभावित किये रहता है, इसलिये वहाँ प्रियतम का ही एक छत्र आधिपत्य रहता है, उनमें किसी गुण का आंशिक तत्व है या नहीं, यह प्रेमी के ज्ञान का विषय नहीं है। आर्ये! विशुद्ध-अनुराग का यही अर्थ है कि यदि अपना प्रेमास्पद नेत्रों का विषय बनकर प्राप्त न हो सके तो भी उसमें दोष-दर्शन-जनित दुःख की अनुभूति अपनी आत्मा में न होने देनी चाहिये। विरह में चित्त से चिन्तन, मन से मनन, और बुद्धि से विमर्श पूर्वक वरण, तीब्रतम तथा महान मधुर होता है। प्रेमास्पद के मन को अपना मन बना लेने से प्रेमी, प्रियतम को सर्वदा अपने समीप ही पाता है अतएव हृदय में केवल भगवद्भाव तथा भगवतप्रेम का पवित्रतम-

दिव्यातिदिव्य–सुधा–स्रोत संप्रवाहित रहना अनिवार्य है। श्याम सुन्दर रघुनन्दन को नित्य निरन्तर अपने अनुकूल मानकर, प्रत्येक परिस्थिति में प्रसन्न रहना चाहिये। आप स्वयं भगवद्भक्ति और भगवदीय–जीवन के अमूल्य–संदेश का अविरल प्रचार और प्रसार, अपनी जीवन–चर्या से कर रही हैं। धन्य है आपकी जीवन–पद्धति को। अतएव आप अपने आराध्य देव को बिना उलाहना दिए हुए उनके प्रेम में पगकर, सूर्य–किरणों के प्रकाश से कोमल–कमल की भांति प्रफुल्ल वदना बनी रहें। अहो ! प्रियतम रघुनन्दन के अंग–प्रत्यंगों का ध्यान क्या साक्षात् दर्शन से किसी प्रकार न्यून ठहराया जा सकता है ? नहीं, नहीं अतएव आज आप और हम राघव के नख–शिखान्त सुन्दर सुरूप माधुरी का स्मरण वर्णन और ध्यान कर विरह–वह्नि से संतप्त हृदय को शीतल करें। क्यों ? ठीक है न।

श्री सिद्धिजी : चित्रे ! रसिकेश्वरजू की रूप–माधुरी के स्मरण ने ही तो आँखों को अतिशय अधीरता के आसन में स्थापित किया है। हाय ! जिनसे सतत बिना विराम के भाद्र–मास की वर्षा होती रहती है, विवेक के वायु से श्याम–घटा के उमड़ने–घुमड़ने में किंचित कमी नहीं आती। लगता है कि वारिद में वायु का स्पर्श भी नहीं हो पाता। भद्रे ! तुम्हारी विचारधारा अत्यन्त निर्मल–नीर से निहित है, जिसमें गोते लगाने से परितप्त–हृदय को अवश्य शीतलत्व का समनुभव होगा। अतः तुम उपक्रम में प्रिया–प्रियतम की रूप–माधुरी का मधुरतम वर्णन करो ताकि मेरे श्रवण–पुटों में कथा–सुधा का संचार होने से हृदय को इतनी शक्ति संप्राप्त हो जाय कि मैं भी तुम्हें उस रूप–रस का पान कराने में सक्षम हो सकूँ।

चित्राजी : रूप रसिके ! राम–रूप की मनसा गोचर–मधुरतम–माधुरी का वर्णन करना वाणी का विषय नहीं है यदि नेत्र के वाणी और वाणी के नेत्र होते तो संभव था कि मैं राम–रूप का आंशिक चित्र खींचकर सम्मुख अव्यक्त को व्यक्त कर सकती किन्तु इस साहाय्य–सामग्री के सर्वथा अभाव में क्या करूँ ? फिर भी निज गिरा को पावन बनाने के लिये कुछ उसी प्रकार कहूँगी, जिस प्रकार मक्षिका अनन्ताकाश का अवगाहन, अपनी शक्ति के अनुसार किया करती है। कुँअर कान्ते ! कौशल किशोर की गभुआरी कुंचित–केशावलि का ध्यान धैर्य को भगाये बिना नहीं रहता। अहो ! इत्र से स्निग्ध कारी–कारी–कान्तियुक्त–कमनीय अलकें श्याम सुन्दर–रघुनन्दन के कन्धों में छूटी हुई, जब क्रीड़ा करने लगती थीं तब मन्मथ का मन्मथ किसके मन का मन्थन नहीं करता था। स्मर का स्मर अपना स्मरण कराके, किसकी स्मृति को विस्मृति में विलीन नहीं कर देता था। हाय... ! हाय.... !! अपनी स्वामिनीजू की अहैतुकी कृपा से एक दिन मुझे प्रियतम की अलकावली का अनुपम स्पर्श शिर में फुलेल धारण कराते समय सुलभ हुआ था। आश्चर्य... ! स्पर्श करते ही मैं स्वयं को भूलकर मदोन्मत्ता की तरह सेवा करते–करते ही अचेत होकर अवनी का आलिङ्गन करने लगी थी। हाय ! अब वह स्पर्श कब मिलेगा ? उस स्पर्श–सुख का कोई सीमाङ्कन नहीं, भव–रस से वह सर्वथा अछूता और भिन्न था। अहा हा.... ! श्रीराम के सच्चिदानन्दात्मक श्याम शरीर का सर्व भावेन समग्र समनुभव केवल वेद वेद्या विदेह तनयाजू को जो प्रणव एवं प्रणय स्वरूपिणी श्री की श्री हैं, जिनके नमस्कार मात्र से जीवों का परम कल्याण होने में नाम मात्र संशय का अवकाश नहीं है, धन्य है हमारे भाग्य ! ऐसी राम–वल्लभा हमारी ननँद हैं, जिन्हें श्री राम का पत्नीत्व सम्प्राप्त है। अस्तु, यही हमारे परमानन्द का विपुल वैभव है।

[श्री किशोरीजू की भाग्य–वैभव प्रशंसा करते–करते चित्राजी प्रेम विभोर हो जाती हैं।]

श्री सिद्धिजी : सहेली ! सचमुच काली-काली-कुटिल-अलकावली का अनुसंधान आत्मा को असमोर्ध्व-सौन्दर्य-सुमेरु के शिखर से अन्यत्र उतरने ही नहीं देता। हाय.... ! यदि हठात् उतरने का कहीं साहस किया जाय तो दो कारे-कारे-विशाल-मृग अपनी स्नेहमयी चितवनि से चित्त को चुराकर मन को अपनी ओर आकृष्ट किये बिना नहीं रहते। अरी चित्रे ! उस नवल नागर जादूगर की जादू भरी नयनों की निरखनि एवं भौहों की मटकनि ने ही तो 'मैं' का गृह-निष्कासन करके "मैं" से सम्बन्धित मेरे का सर्वस्व अपहरण कर लिया है। हाय ! बिना "मैं" "मेरे" के मुझे कौन जगत में पूछने वाला है। अरे ! अब तो वही अवलोकनि सिद्धि कुँअरि की सर्वस्व है। हाय ! उस चारुतम-चितवनि को चित्त के दर्पण के सम्मुख किये बिना चित्त में चैन का प्रतिबिम्बि ही नहीं पड़ता। दिन में न भूख है न रात्रि में निद्रा हाय ! हाय !! अमृतमयी उस मन-मोहिनी-चितवनि से चुराया हुआ मेरा चित्त चंचलता का परित्याग कर बार-बार उसी के लिये आतुर हो रहा है। आश्चर्य ! आश्चर्य !! हाय... ! हाय... !!

तीर तुपक के चोट से, बचे लिये जे ओट ।
राम दृगों की ओट से, बचे न रहकर कोट ।।

पद : कमल नयन के बाँके बने दोउ नैन ।
बड़रे कजरे अति अनियारे, छुरी धार ते पैन ।
अरुण असित, सित चलत रहत है, चोट करत दिन रैन ।
जियत मरत अरु झुकि झुकि डोलत, जिव के चित नहिं चैन ।
हर्षण ओट लियहु नहि बाँचै, जो लखि पावै मैन ।।

हाय... ! कमल नयन के नयन, बिना संकोच के खूब खुले हुये, मुझे बार-बार कब देखेंगे। हाय ! मृत्यु के मुख में पड़ी हुई मुझको, अपनी सुधा-दृष्टि से कब जिलायेंगे। हाय ! हाय !!

[श्री सिद्धिजी प्रभु कमल-नयनों की स्मृति में विस्मृति की शय्या में आसीन हो विलख-विलख कर रुदन करने लगती हैं। हा श्याम सुन्दर... !]

चित्राजी : (धीरज बँधाकर) राम-प्रिये ! प्रियतम रघुनन्दन के भृकुटि-कमान पर चढे हुये नयनों के बाण, लक्ष्य वेध, में कभी नहीं चूकते, आपका यह कहना सर्वथा सत्य है किन्तु आश्चर्य यह है कि चोट खाकर भी और-और चोट खाने की इच्छा का अन्त नहीं होता। हाय ! हम सब इसी रोग की तो रोगिनी हैं। बलिहारी है उन नयनों की, बलिहारी जिनका स्मरण ही स्मृति-शून्य बनाये दे रहा है। मनोरमे ! जानकी-जीवन के जिस अवयव पर दृष्टिपात करती हूँ वहीं मेरा मन-मधुप मोहित होकर, मधुरतम मधुरस पान में रम जाता है। अहो ! राघव की शुकाकार-सुन्दर-नवल-नासिका जिसमें अधर का स्पर्श करती हुई, एक अनुपम अद्वितीय मणि लटक रही है कितनी मन-मोहिनी है। अहो ! बड़े-बड़े योगियों की संयमित-दृष्टि भी अपने नासिकाग्र का परित्याग कर नरपति-नन्दजू के नासा-मणि से प्रचुर प्रयास करने पर भी नहीं टलती। हाय ! वह नासामणि की झूलनि आँखों में झूल रही है फिर भी लोभी-लोचन लखने के लिये ललक रहे हैं। आश्चर्य ! आश्चर्य !! हे प्यारे ! श्याम सुन्दर ! हा मदन मोहन रघुनन्दन ! अब कब आप अकुलाई हुई, अतृप्त आँखों के विषय बनेंगे। हाय ! स्थापत्य कला के मूर्धन्य सृष्टि-स्रष्टा की कला, जिस प्रभायुक्त सूर्य के सदृश प्रकाशमान-कमनीय सुन्दर-सुडौल-मूर्ति को देखते

ही विलज्जित होकर, ऊपर को सिर नहीं उठा सकती, उस मूर्ति–माधुरी का दर्शन खूब खुले हुये मेरे नेत्र कब करेंगे।

[रामजी की स्मृति में विह्वल चित्राजी के आँखों से अजस्र अश्रु–धारा बहने लगती है।]

श्री सिद्धिजी : (चित्राजी के आँसू पोंछकर) चित्रे ! नवल नागर जू की नासिका और नासामणि की सुषमा, जब योगियों और मननशील मुनियों के मन को मुग्ध कर लेती है, तब कामिनियों का मन, मोती की तरह नासिका में लटका रहे तो, आश्चर्य ही क्या ? हाय ! हाय !! कौशिल्या–कुमार के कमनीय–कपोलों का स्मरण तो क्या से क्या कर देता है मुझे और कहाँ से कहाँ ले जाता है, कहने में गिरा की गम नहीं। दर्श के सदृश सुन्दर–सुचिक्कन–कपोलों की कान्ति किस के हृदय में क्षोभ नहीं उत्पन्न करती। अहा ! अरुणाई से संयुक्त श्याम–श्याम, गोल–गोल गालों की अतिशय आभा ललाई को लिये हुये, रस भरे–गदरीले–अंगूरों के समान है, देखकर रसिकों का जी ललच पड़ता है, मुख में पानी भर आता है। अहो ! हमारी लाडिली ननँद के धन्य भाग्य हैं, जिन्हें स्वतन्त्रतापूर्ण–निर्द्वन्द राघवजू के गंड स्थल का उपभोग प्राप्त है। आली ! कामना करती हूँ कि ललीजू को लालजी के लोने–लोने, लाल–लाल कमनीय–कपोलों के अनवरत–अनुभव का आनन्द नव–नव वर्धमान होता हुआ अक्षयता को प्राप्त हो। मेरा यही परमानन्द है, यही मेरे पति–परमेश्वर का उपदिष्ट महामन्त्र है, यही धेय है और यही ज्ञेय–गेय है।

चित्राजी : रस–रूपिणी का रस–ज्ञान गहन है। अनुमान–प्रमाण तो वहाँ होता है, जहाँ प्रत्यक्ष–प्रमाण का अभाव हो। रसप्लुते ! रघुनन्दन के कपोलों का अनुभव वात्सल्य–रस के रसिक करते हैं, किन्तु जो विलक्षण स्वाद की अनुभूति विदेह–तनयाजू को संप्राप्त होती है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। मैं यह भली–भाँति जानती हूँ कि उनका वह अनुभवानन्द ही आपका चरमोत्कृष्ट–सुख है। कुँअर–कान्ते ! इसी प्रकार अरुणिम–अधर–पल्लवों के दर्शन से दिव्याह्लाद की अनुभूति आत्मा में अवश्य होती है, यह मेरा स्वयं का अनुभूत विषय है किन्तु जिन्हें उनका सुधा को सृजन करने वाला चारु–चुम्बन संप्राप्त है, उन्हें कैसी निरतिशय–अमृतानन्द की समुपलब्धि होती होगी अन्य के कल्पना का विषय नहीं है। अहा ! अरुणिम–अधरों के बीच से निस्सरित मन्दस्मिति की मनोहारी–भाषा चन्द्रदेव की किरणों को तिरस्कृत किया करती है। बोली की मधुरता में तो अत्यन्त अनोखापन विद्यमान रहता ही है। बोल क्या ? फूल झरते हैं। लगता है कि अव्यावृत–वाणी का विकास अवध बिहारी के श्री–मुख से होता ही रहे जिसे सर्वदा श्रवण कर–करके भी हमारे कर्ण अतृप्ति का अनुभव करते रहें किन्तु यह साधन–साध्य नहीं, चतुर्मुखी–प्रतिभा तीक्ष्ण–बुद्धि तथा निष्काम–सेवा के बल से भी कोई उपर्युक्त श्री राम के श्री अंग–अवयवों के सर्वाङ्गीण–सुख का स्वप्न में भी दर्शन नहीं कर सकता। रामानन्द की प्राप्ति तो राम–कृपा के बल से ही संभव है। हा श्याम सुन्दर .... !

श्री सिद्धिजी : चित्रे ! श्याम सुन्दर रघुनन्दन की मुख–श्री शत–शत–शारदीय–शशि को विलज्जित करने वाली है। अहा ! प्यारा–प्यारा अवधेश–कुमार का आनन कितना प्रियकर है, कितना महान मधुरिम है। अरे... ! अरे ...!! आनन क्या? अनन्त–सौन्दर्य और माधुर्य से संयुक्त अमृत का विशुद्ध–विग्रह है। मैं बड़ी भाग्याधिका

हूँ कि मेरी आत्मा की आत्मा अवनिकुमारी उस आनन्द का नित्य नव-नव अनुभव किया करती होंगी।

[कल्पना जनित आनन्द की स्थिति में श्री सिद्धिजी के सर्वाङ्ग प्रेम-चिह्नों से संयुक्त हो जाते हैं।]

चित्राजी : प्रेम-विग्रहे ! सीतारमण-राम का रामाभिरामीय-अरुणाभ-श्याम-मुखाम्भोज बिना भास्कर के अहर्निशि आत्म-चैतन्य से दीप्तिमान एवं विकसित बना रहता है अतएव पराग-प्रेमी भक्त-भ्रमरों का उसमें मंडराना सर्वदा, सर्वदेश व सर्वकाल में स्वाभाविक है किन्तु श्री-कर-कमलों की कोमलता भी कम नहीं है, अपितु वर्णनातीत है। अहा हा ! उन कर-कञ्जों का स्पर्श कितना मधुर, मनोरम, सुखद व शीतल है ! स्पर्श करते ही सारे शरीर में एक सिहरन, एक आन्दोलन उत्पन्न कर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि और आत्मा में अत्यधिक आनन्द का आविर्भाव कर देने वाला है। हाय ! कब प्रियतम के पाणि-पंकजों का प्यार भरा प्रियकर-स्पर्श प्राप्त होगा। हाय ! कब वह अनर्घ-अवसर आयेगा जब सिद्धि-सदन में उबटन करते समय, अनंग-मोहन-आभूषणों से आभूषित आजानु बाहुओं के स्पर्श-सुख को संप्राप्त करूँगी। हाय.... !

[चित्राजी के नेत्रों से सहज ही झर-झरकर आँसू गिरने लगते हैं।]

श्री सिद्धिजी : चित्रे ! चित-चोर के पाणि-पंकज ही तो प्रेमियों का स्पर्श कर यह संदेश देते हैं कि प्रियतम इतना अत्यधिक प्यार प्रदान करते हैं, साथ ही सर्व-लोक-शारण्य भी हैं, सबको अभय प्रदान करते हैं। अहो ! श्री-कर-कमल ग्रहीता होकर भी आज परित्यक्ता की भाँति विचित्र वेदना का अनुभव कर रही हूँ मैं। (कुछ रुककर साश्रु गद्-गद् स्वर में) हाय ! प्रियतम पद-पंकज-पराग की परम लुब्धा-भ्रमरी को पद्मजार्चित-प्रणत-प्रति-पालक, विपत्ति-विनाशन, वसुन्धरा-विभूषण श्री चरण-कमल का दर्शन कब प्राप्त होगा। चित्रे ! श्याम सुन्दर दशरथ-नन्दन के चरण-कमल का अनुसंधान भव-तारक तो है ही, साथ ही रसिकों के लिये रस स्रोत भी है। अहा ! कमल-कोमल, लाल-लाल-तलवों की लुनाई का दर्शन जब देहाभिमानियों को देह से विदेह बना देता है तब उनका स्पर्श-सुख कितना महान मधुर और प्रमाण रहित होता होगा। इसकी अनुभूति तो उन्हीं भाग्याधिक-विभूतियों को है जिन्हें कौशल किशोर की कृपा से चरण सेवा का सुअवसर हाथ लगा है। अहा ! अरुणिमा से युक्त श्वेत-नखावली, चन्द्र-कँाति का तिरस्कार करती हुई, भावुक-जनों के हृदय-गुहा के गहन अन्धकार को बहिष्कृत करके, दिव्यानन्द का आलोक प्रदान करती है। नवल-नूपुरों से विभूषित पद-पृष्ट परम रम्य और चित्ताकर्षक हैं। हाय ! कब प्रभु-पद-पद्मों में लिपट कर उनकी शीतलता से हृदय में जलती हुई विरह-वह्नि को बुझाऊँगी। हाय ! उन श्री चरणों का उपयोग विविध प्रकार से कर करके कब स्वस्थ और सुखी होकर सुख सिन्धु में समा जाऊँगी। हाय ! उद्‌बोधनात्मक प्रबुद्ध-वक्ताओं के प्रवचनों के प्रभाव से अनन्त गुना प्रभावित करने वाला, चित-चोर रघुनन्दन के चरण चिंतन का यह प्रभाव है, अस्तु उन्हें अपने कर से सेवन करने की इच्छा के आगे, तुम्हारी वार्ता सुनने की श्रवण-चेष्टा समाप्त हो रही है। हाय.... ! हाय.... !!

[श्री सिद्धिजी हाय कहती हुई अर्ध मूर्छा को प्राप्त हो जाती हैं। रोम-रोम से श्रीराम-प्रेम-रस उनके अंगों से निर्झरित हो रहा है ।]

चित्राजी : (सचेत करके) प्रिय–पद–पंकज भ्रमरिके ! सौन्दर्य के सिन्धु, माधुर्य–महोदधि, परम सुकुमार, श्याम सुन्दर रघुनन्दन की सर्वाङ्ग–सुघरता, जो लावण्य से लपेटी हुई है, किसके मन को मोहित करके स्ववश में नहीं कर लेती। कुँअर वल्लभे ! आश्चर्य तो यह है कि कोटि–कोटि–कन्दर्प–दर्प–दलन–दशरथ कुमार को ज्यों–ज्यों जब तक देखता रहे, त्यों–त्यों तब तक उनके नव–नव सौंदर्यादि–शरीर–सम्पत्तियों का नितान्त निखार होता ही रहता है और वह इति को नहीं प्राप्त होता। आश्चर्य ! रघुनन्दन के रूप–माधुरी का सकृत अवलोकन करके, पुरुष–वर्ग भी पुं–भाव का परित्याग कर स्त्रीत्व की कामना करने लगता है। कहाँ तक कहा जाय, राघव के रूपौदार्य की सरिता में रूपोत्कृष्ट–विधु–विधि–हरि–हर भी मनोज के साथ बिना बहे न बचे। रती–रमोमा तथा शची–शारदादि सुर–सुन्दरियाँ तो राम–रूप का दर्शन कर, अपने को सम्हालने में सक्षम न हो सकीं । अपने–अपने पतियों से विलग होकर, कोहवर–कक्ष में उपस्थित रामा–गणों में मिल गईं और रस–वश श्रीरामजी से हास–बिलास करके ही कृत–कृत्य हुईं, पुनः अतृप्ति का अनुभव करके, आँखों से अश्रु विमोचन करती हुई, श्रीरामजी के रूप–रस का आस्वादन करने के लिए भविष्य की प्रतीक्षा में निमग्ना देव–वधुयें, स्व–स्व स्वामियों के समीप सिधार गईं । हाय! हाय !! रस से ओत–प्रोत प्रियतम के रूपौदार्य का दिव्य– दर्शन विदेहपुर की वराङ्गनाओं को कब सुलभ होगा। हाय ! रूप का स्मरण आनन्द का अनुभव कराता हुआ, हमको स्मृति शून्य बनाये दे रहा है। हा...रसिकेश्वर ! हा...रघुनन्दन !! हा...मनमोहन !! हा...श्यामसुन्दर ! हा...जानकी जीवन!! हा ! हमारी सिद्धि–देवि के सिद्ध–देव ! हाय !! हमारी इस दयनीय दशा के परिवर्तन का परिवर्धन कभी होगा क्या ?

[कहते हुये चित्राजी मूर्छित हो जाती हैं किन्तु प्रभु–प्रेम–प्रकाश से मुख दीप्तिमान हो रहा है।]

श्री सिद्धिजी : (चित्रा को सचेत करके) सहेली ! जैसे सर्वाङ्गसुभग श्याम सुन्दर रघुनन्दन हैं वैसी ही सर्वाङ्ग सुन्दरी श्री सियाजू की शरीर–सम्पत्ति की इयत्ता नहीं है। वे तड़ित–समूह–दीप्ति–दर्प–दमनकारी–कान्ति–कमनीयता से युक्त कनकोज्वला हैं, गंधमयी हैं। अनन्त–अरब–अरविन्दों का सौरभ श्री किशोरीजू के शारीरिक–सौन्दर्य से तिरस्कृत है। अहा हा ! राम नामक श्याम–भ्रमर उस गन्ध की संप्राप्ति से गन्धोन्मादित होकर संप्रमुग्ध हो गया होगा। चित्रे ! रमा–उमा–शारदादि सुर–सुन्दरियों का काय–वैभव, हमारी ननँद के समक्ष शतांश भी नहीं है। कोटि–कोटि–शारदीय–पूर्ण–सुधाकर, श्री विदेहवंश–वैजयन्ती के वरानन की समता नहीं कर सकते। प्रकृति की सुन्दरता श्री किशोरीजू के सौन्दर्य–सिन्धु की बिन्दु ही है। अत्युक्ति नहीं, प्रत्यक्ष में प्रमाण क्या ? सच पूछा जाय तो सौन्दर्य में श्याम सुन्दर भी श्यामाजू से न्यून ही हैं। श्री लाड़िलीजू रस–स्वरूपा हैं अतएव रसिकेश्वर राम को रमाने वाली रामा हैं। परमाह्लादोत्पन्न करने वाली अचिन्त्य आह्लादिनी शक्ति हैं और किंबहुना अपने प्रियतम की आत्मा हैं। अहा हा ! प्रिया–प्रियतम की प्यारी–प्यारी झाँकी को झाँककर, अब आँखें अन्य–आलोक का अवलोकन नहीं करना चाहती। हाय ! कब वह स्वर्णिम समय सम्मुख आयेगा जब मेरे ननँद–ननदोई, अपनी इस किंकरी के भवन में निवास करते हुये, मुझसे अपना प्रिय कैंकर्य करायेंगे। समय तो परिवर्तनशील होता है। क्या वियोग के दिन संयोग में समाविष्ट होकर, मुझे आनन्दाम्भोधि का अवगाहन करा सकेंगे ? हाय ! हाय !! हृदय में तड़पन